ों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

द्धयोग

क : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

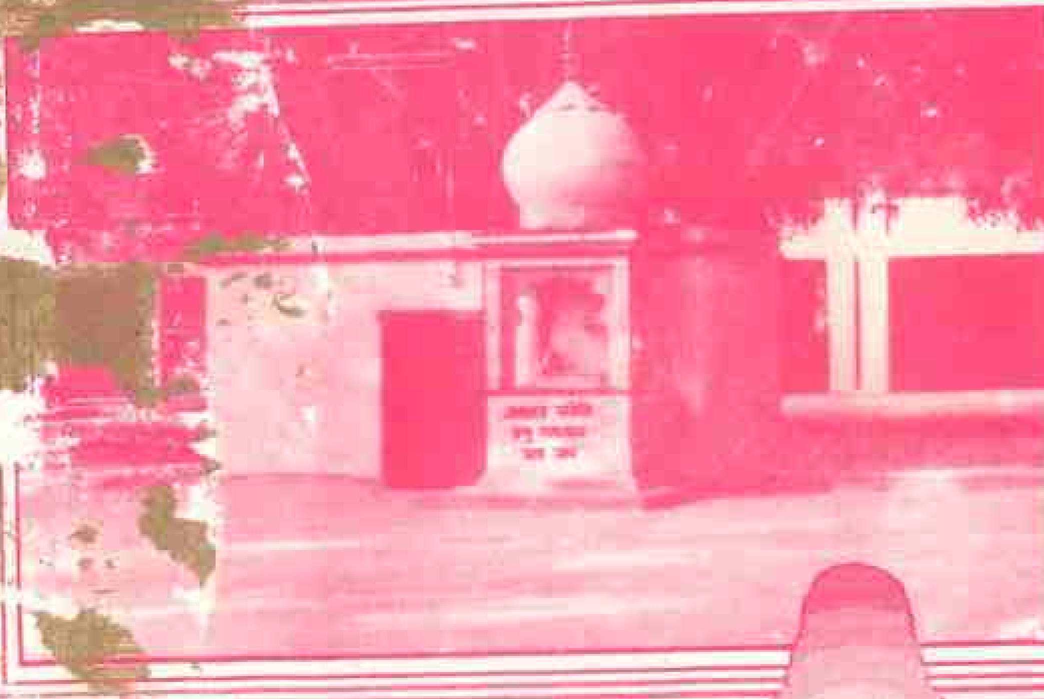

अप्रैल-1999 अंक-1

द्धगुफा प्रकाशन

(आगरा)-283 202

SIDDHYOG
APRIL, 1999

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा
चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव

एक प्रति रु० 8-00
वार्षिक शुल्क रु० 75-00
द्विवार्षिक रु० 140-00
आजीवन रु० 750-00

इस अंक में

- विशेष लेख
  अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज... 2
- सम्पादकीय 11
- सन्तों की वाणी में श्रीगुरुदेव
  श्री भुवेन्द्र झा............................ 14
- किमस्तियोग:
  श्री द्वारका प्रसाद शर्मा................ 19
- योगविभूतियाँ क्या और कैसे
  — प्रो. आचार्य चन्द्रहास शर्मा........... 22
- मंगल द्वादश मंजरी स्तव:
  — श्री त्रिपुरानन्द जी...................... 33
- योगविभूतियों से मंडित योगिनी चुड़ाला
  श्रीमती सरिता भारद्वाज.............. 35
- योगमार्ग में गुरु की महत्ता
  श्री पूर्णचन्द्र पन्त....................... 42
- विरह-व्यथित-विनय-वाटिका
  कु० रुक्मिणी वर्मा....................... 47
- कृपा निधान परमपूज्य श्री सद्‌गुरुदेव
  डा. स्वामी केशवाचार्य................. 48
- अद्‌भुत अहैतुकी कृपा
  श्री केशव देव उपाध्याय............. 52
- अद्‌भुत कृपालीला
  श्री राजेश कुमार श्रीवास्तव......... 58
- सिद्धयोग प्रकाशन का
  आय-व्यय विवरण...................... 64

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 32
अंक 1

अप्रैल
1999

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

सुविज्ञेयः न एषः

न नरेणावरेण प्रोक्त एष
सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति
अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्।।

कठोपनिषद्। १। २। ८।

अर्थात्

प्रकृतिपर्यन्त जो भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व है, यह आत्मतत्व उससे भी सूक्ष्म है। यह इतना गहन है कि जब तक इसे यथार्थरूप से समझाने वाले कोई महापुरुष नहीं मिलते, तब तक मनुष्य का इसमें प्रवेश पाना अत्यन्त कठिन है। अल्पज्ञ साधारण ज्ञान वाले मनुष्य यदि इसे बतलाते हैं और उसके अनुसार यदि कोई विविध प्रकार से इसके चिन्तन का अभ्यास करता है, तो उसका आत्मज्ञान रूपी फल नहीं होता, आत्म तत्व तनिक-सा भी समझ में नहीं आता। दूसरे से सुने बिना केवल अपने-आप तर्क-वितर्क युक्त विचार करने से भी यह आत्मतत्व समझ में नहीं आ सकता। अतः सुनना आवश्यक है; पर सुनना उनसे है, जो इसे भलीभांति जानने वाले महापुरुष है। तभी तर्क से सर्वथा अतीत इस गहन विषय की जानकारी हो सकती है।

विशेष लेख

"मेरे श्री गुरुदेव"

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वर:,
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नम:।।

मैं अपने श्री गुरुदेव के चरणारविन्द की महिमा किन शब्दों में लिखूं यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। गुरुदेव एक ऐसा शब्द है जो सभी के लिए मान्य है, और हर व्यक्ति को किसी भी प्रकार से गुरुदेव की शरणागति प्राप्त कर चुका है, उसके लिए उसके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं। साधक जब तक गुरुदेव के स्वरूप में ईश्वर बुद्धि धारण नहीं करता तब तक वह परम श्रेय के पथ का पथिक नहीं बन सकता। इसलिए भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखने वाली भारतीय जनता अपने–अपने गुरुदेव के चरणारविन्द में पूर्ण ईश्वर बुद्धि रखती है व श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में न्यौछावर होना अपना परम सौभाग्य समझती है। गुरुदेव क्या है, और उनका स्वरूप क्या है यह एक पृथक लेख का विषय है, फिर भी मैं इतना बतला देना उचित समझता हूं कि गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं, एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक की श्रद्धा से निर्वाचित स्वरूप।-जगदात्मा भगवान् श्री कृष्ण ने अपने मुखारविन्द से श्रीमद् भगवद्गीता के १७ वें अध्याय में कहा है–

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत,
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्ध: स एव स:।।

अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्दघन नित्य चेतन का स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्गार है। श्रद्धावान् व्यक्ति जिसके विषय में जो सोचता है वहीं से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। धन्ना जाट नामदेव आदि के कितने उदाहरण मिलते हैं वह सब के सब श्रद्धा के ही उज्ज्वल प्रतीक हैं। किसी साधारण व्यक्ति को ईश्वरीय भावना से देखना यह भक्त के हृदय की पवित्र भावना है व ईश्वर का ईश्वर होना उसकी अपनी यथार्थता है। गुरुदेव के विषय में भी सभी आस्तिक लोगों की ईश्वरीय भावना होती है और अपनी भावना के अनुरूप ही वह लोग फल को पा लेते हैं **"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी"**। इसके अतिरिक्त यदि श्रद्धेय पुरुष परिपूर्ण है और साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्टलाभ में कोई शंका का स्थान है ही नहीं। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियाँ लिखने लगा हूँ, सिद्धों के महासिद्ध, सर्व समर्थ योगयोगेश्वर व सर्वत: परिपूर्ण हैं। उनकी पवित्र ख्याति को बहुत ही कम लोग जान पाये हैं। सम्भव हो सकता है इस विषय में उनका अपना ही संकल्प हो; किन्तु उनके चरणारविन्दों के चिन्तन करने वाले सर्वसाधारण जन समुदाय के अन्दर जो-जो चमत्कारक घटनायें घटित होती रहती हैं उनका इस छोटे-से लेख के अन्दर लिखना भी सम्भव नहीं हो सकता।

उनकी पवित्र जन्म भूमि अमृतसर (पंजाब) है। अमृतसर में ज्योतिष विद्या के गणमान्य विद्वान्

श्रीरामलाल प्रभवे नमः

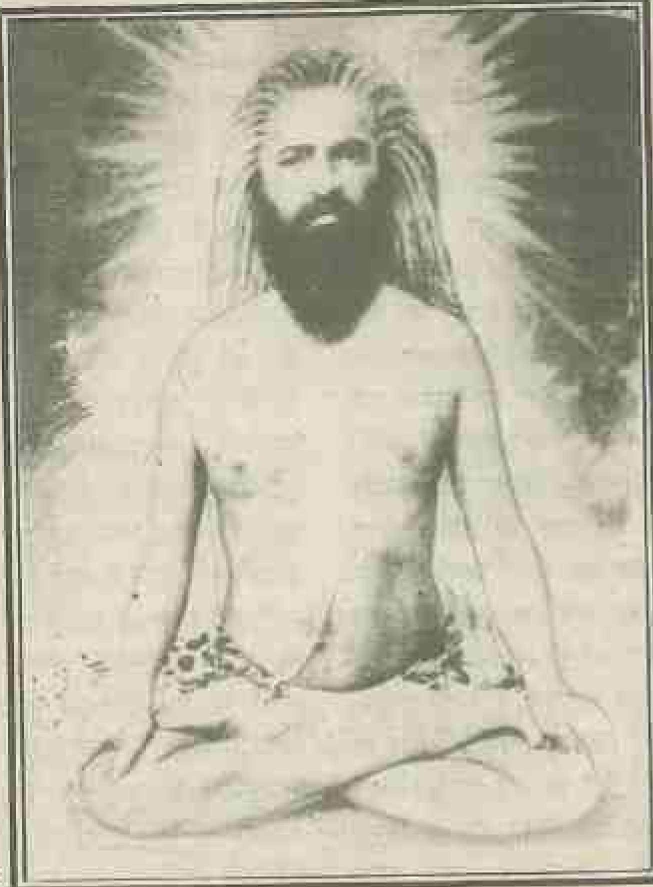

आनन्दकन्द महाप्रभु रामलाल जी महाराज

महामान्य पं. गण्डाराम जी ज्योतिषी के घर में उनका पवित्र अवतरण हुआ। लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बाल–क्रीड़ा करते हुये घर पर रहे। उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। उसमें सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह थी जहाँ–जहाँ पर कोई पहुँच वाला सन्त मिलता और मेरे श्री गुरुदेव जी के स्वरूप को पहचानता वही गद्‌गद् कण्ठ होकर स्तुति करता और कृपा की भीख माँगता। इन पंक्तियों में मैं अपने गुरुदेव जी के जीवन–चरित्र के विषय में कुछ लिखूं, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। फिर भी इतना कह देना तो आवश्यक ही है कि अपने बाल्यकाल में ही वह घटनायें घटीं जो सर्वसाधारण के जीवन में कभी हो नहीं सकतीं। चार साल की उम्र में माता–पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराना छः साल की उम्र में वृद्धा पड़ोसिन जो मरणासन्नावस्था में थी उसके सिर पर अपने कर–कमल का स्पर्श कर पूर्ण गति का वरदान देना, लगभग ९ वर्ष की अवस्था में अमृतसर के पास रामतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्माओं को स्वयं ही जाकर दर्शन देना, चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में वनों को जाते हुये मुरादाबाद की तरफ से निकलते हुये किसी गाँव में किसी कुम्हार के लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनके जन्मजात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। किन्तु फिर भी लोकलीला का अनुसरण करते हुये जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन–यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नैपाल हिमालय को चले गये। नैपाल की राजधानी काठमांडू से ऊपर जहाँ बागमती गंगा का उद्‌गम स्थान है, वहाँ के कुछ दूर चल कर किसी झार–खण्ड में रह कर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदा शिव स्वरूप एक महापुरुष आये जो मेरे श्री गुरुदेव जी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक स्थान पर छोड़ दिया। केवल दो एक बातें बतलाईं। एक नर–भक्षक जड़ी दिखलाई और कहा कि यह जड़ी नर–भक्षक है, मनुष्य को खा जाती है। दूसरी बात कि तुम यहाँ रहो, यह कह कर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। उस स्थान से ६–६ मील ७–७ मील की दूरी पर कोई–कोई सिद्ध महापुरुष रहते थे। मेरे श्री गुरुदेव विचरते हुये उन लोगों से मिले। उन लोगों ने बताया, यह महापुरुष सदाशिव हैं और कई हजार वर्षों से यहाँ पर बैठे हुए हैं। यही सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं और छः महीने में एक बार समाधि से उठते हैं। श्रीप्रभुजी मेरे गुरुदेव अपने मुखारविन्द से यह बतलाते थे कि जब तक श्री महाप्रभु जी समाधि से उठें तब तक उनकी अपनी भी कई रोज की समाधि लग उठी थी। इसका अर्थ यही है– **'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तु छिन्नसंशयाः''**। अर्थात् गुरुदेव का चुपचुपी का व्याख्यान हो और शिष्यों के संशय स्वतः ही नष्ट होते चले जायें। यही सद्‌गुरु तत्व की महत्ता है सामर्थ्यवान् गुरुदेव को बहुत उपदेश करने की आवश्यकता नहीं होती उनका संकल्प ही **''कर्त्तुम कर्त्तुं मन्यथाकर्त्तुम्''** की शक्ति रखता है मेरे श्री गुरुदेव हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर लगभग १२ वर्ष रहे और फिर संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दुःखी जीवों को देखकर उन दयासागर जी के मन में दया के भाव उमड़े और उन्हें संसार के

आधिव्याधियों से पीड़ित दुःखी प्राणियों को पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्री कृपानिधि जी भू-मण्डल पर लौट आये। श्री जी अपने मुखारविन्द से यह कहा करते थे कि हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर बैठ करके आधि-व्याधियों से पीड़ित दुःखाक्रान्त जीवों को देखा और उनके भले की भावना पूर्णरूपेण मन में जाग उठी, अतः पुनः संसार में आ करके प्राणी मात्र के भले के लिए पवित्र योग-मार्ग के प्रचार का आरम्भ कर दिया—

"प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् प्रज्ञा-प्रासाद पर आरूढ़ हुये योगिराज संसार वालों को इस प्रकार देखते हैं जैसे पर्वत शिखर पर बैठे हुये व्यक्ति भूमि वालों को देख लिया करते हैं। ठीक उसी उदाहरण के प्रतीक बन कर मेरे श्री गुरुदेव भू-मण्डल पर आये और उन्होंने योग-प्रचार का पवित्र कार्य आरम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी ने अवनी-मण्डल पर आकर तीन प्रकार के कार्य प्रारम्भ किये—

१. योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति इसमें भी सबसे विशेष बात थी निज निर्मित साधनों का प्रचार। उनमें उनका एक प्रमुख साधन था; "जीवन तत्व साधन" इस जीवन तत्व साधन के अन्दर नौ क्रियायें हैं, जिनके करने से लोगों को अद्‌भुत व आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस साधन के अन्दर सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह लगातार विधि-विधान पूर्वक करने से पेट में इस प्रकार की अग्नि पैदा करता है जिसको "वृक" अग्नि कहते हैं। जिस प्रकार जंगली जानवर भेड़ियों को हर समय भूख लगती रहती है, उसी प्रकार इन साधनों के करने से मनुष्य को हर समय भूख लगती रहती है। पेट में एक अग्नि सी धधकती मालूम पड़ती है। वह अग्नि तब तक बन्द नहीं होती जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक न हो जाय। इस के साथ-साथ इस साधन के अन्दर एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस साधन को करते हुये बच्चे का ध्यान करने की एक विधि है जिससे मन की एकाग्रता का स्वाभाविक लाभ होता है और बच्चा दीखने लगता है। इस बच्चे के देखने का आल्हाद हर समय बना रहता है। और उससे उनके अधिकांश रोग की निवृत्ति हो जाती है। इसके साथ ही साथ दृढ़तर अभ्यास करने के बाद वही बच्चा श्रीकृष्ण आकृति में बदल जाता है, और साधक का अध्यात्म में प्रवेश हो जाता है। इस साधन का नाम है जीवन तत्व साधन।

जीवन तत्व साधन

इस साधन की प्राथमिक क्रिया का नाम सर्वोत्तान है।

(१) सर्वोत्तान—इसमें मनुष्य को लेट कर अपने हाथों की अंगुलियाँ अपने हाथों में डालकर व उल्टा करके सिर के पिछली तरफ ले जा करके व पैरों को लम्बे पसार करके जितना भी अधिक से अधिक हम तनाव दे सकते हैं, वह देना चाहिये। एक बार ऐसा करके शरीर को ढीला छोड़ देना चाहिये। यह क्रिया इसी प्रकार तीन बार करनी चाहिये। यह क्रिया केवल मात्र शरीर के तनाव के लिये की जाती है जिससे शरीर का हर एक स्नायु इस तनाव को पाकर यथार्थ गति को प्राप्त हो जाये।

(२) स्कन्ध चालन—इस क्रिया को करने के लिए मनुष्य को सावधान होकर बैठ जाना चाहिए। उसका ठीक प्रकार यह है—अपने दाहिने कन्धे को धीरे से नीचे की ओर झुका दीजिए जितना भी दबाया जा सके। ऐसी स्थिति में बाँया कन्धा अपने आप ऊपर को उठ जायेगा। फिर धीरे-धीरे दाहिने

कन्धे को ऊपर धीरे–धीरे ले जाओ। ऊपर की ओर ले जा करके उसके पीछे की ओर ले जाओ। ज्यों–ज्यों दाहिने कन्धे को नीचे की ओर ले जाओगे। त्यों–त्यों बाँया कन्धा ऊपर की ओर हो जायगा और ज्यों–ज्यों दाहिना कन्धा आगे को झुकाओगे तो बाँया कन्धा स्वाभाविक पीछे की ओर हो जायगा, और ज्योंही ऊपर की ओर हो करके दाहिना कन्धा पीछे की ओर जायगा त्यों ही बाँया कन्धा नीचे की ओर आकर आगे की ओर हो जायगा। इस क्रिया के करने पर दोनों कन्धे साईकिल के पैडिलों की तरह या चक्की के बैल्डों की तरह से नीचे–ऊपर होकर चलते रहेंगे। इस गतिविधि से हम अपने कन्धों को आगे पीछे की ओर झुकायेंगे। ठीक इसी प्रकार इसकी विपरीत गति से यह कन्धे पीछे से आगे की ओर भी चलाये जा सकते हैं। यदि हम पीछे की ओर से आगे की ओर चलाना चाहते हैं तो अपने दाहिने कन्धे को कान तक ऊपर उठाओ और बाँया कन्धा नीचे की ओर ले जाओ। कान तक ऊपर उठे हुये दाहिने कन्धे को आगे की ओर झुकाओ और बायें कन्धे को गोलाकार घुमाते हुये पीछे की ओर ले जाओ। आगे की ओर झुके हुये दाहिने कन्धे को गोलाकार घुमाते हुए नीचे की ओर ले जाओ। दाहिने कन्धे को नीचे की ओर झुकाने से बाँया कन्धा स्वयं ही पीछे की ओर घूमता हुआ ऊपर की ओर चला जायगा। इस प्रकार दोनों कन्धे बेलनाकार घूमते रहेंगे। उदाहरण में जैसे साईकिल के पैडिल घूमते हैं। इस क्रिया का नाम स्कन्ध–चालन है। इसके करने से दोनों फेफड़े ठीक काम करने लगते हैं यकृत और प्लीहा अपनी यथार्थ स्थिति में रहते हैं। जिसका यकृत बढ़ गया है वह स्कन्ध चालन से अवश्य ही यथार्थ स्थिति में आ जायगा। इसके बाद तीसरी क्रिया का नाम पादचालन है।

(३) पादचालन—यह क्रिया करते हुए सीधे लेट जाना चाहिए और लेट कर अपने पैर के ऊपर पैर रख कर साधारण गति से हिलाना चाहिए। हिलाने का क्रम यह है— यदि हमने अपना दाहिना पैर बाँये पैर के टखने पर रखा है तो दायें पैर की ऐड़ी को बराबर जमीन में लगाते रहो और बाँये पैर के अंगूठे को बराबर जमीन में लगाने का प्रयत्न करते रहो। इसी प्रकार यदि बाँया पैर दाहिने पैर के टखने पर रखा हो तो इस विधि से हिलाओ कि बांये पैर की ऐड़ी जमीन पर लगती रहे और दांये पैर का अंगूठा जमीन पर लगता रहे। यह क्रिया बहुत साधारण है, किन्तु छोटी व बड़ी आंतों के लिए परम लाभदायक है। इसके करने से छोटी व बड़ी आंते यथार्थ गति से अपना काम करने लगती हैं। इसके बाद चौथी क्रिया का नाम नाभिचालन है।

(४) नाभिचालन—इस क्रिया का यथार्थ रूप इस प्रकार है, जैसे कि मगर–मच्छ किसी जीव का भक्षण करके बाहर बालुका में लाकर अपने पैर को इधर–उधर हिलाया करता है। इस क्रिया को करते हुये मनुष्य को चाहिये कि वह दाहिने से बाईं ओर और बायीं से दाहिनी ओर करवट बदलने की तरह शरीर को पलटता रहे, किन्तु सिर विधिवत् एक ही जगह पर स्थिर रहना चाहिये। इस क्रिया का नाम नाभि–चालन है। इस क्रिया के करने से बहुत भूख लगती है, मन्दाग्नि निवृत्त हो जाती है। जिनके पेट में हवा बनती हो या बननी बन्द हो जाती हो, यह क्रिया प्रायः पेट के सभी रोगों के लिए लाभदायक है। इसके बाद पाँचवीं क्रिया का नाम जानुप्रसार है।

(५) जानुप्रसार—इस क्रिया को नाभि–चालन के बाद अवश्य करना चाहिये। नाभि–चालन के बाद साधारण रीति से लेटे रहना चाहिये और अपने दाहिने पैर को मोड़कर जानु के पास दाहिने पैर के

पंजे को सटा देना चाहिये। धीरे–धीरे अपने दाहिने पैर के जानु को जमीन पर लगा देना चाहिये। इस प्रकार यह क्रिया तीन बार दाहिने पैर से और तीन बार बायें पैर से करनी चाहिए। अर्थात् दाहिने पैर से करने के बाद बायें पैर के पंजे को दाहिने पैर की ही तरह दायें पैर के जानु के पास सटाकर बायें पैर के घुटने को तनाव के साथ शनैःशनै जमीन पर लगाना चाहिए और धीरे–धीरे छोड़ देना चाहिए। इस क्रिया के करने से जंघाओं व पेट का पूरा स्नायु–मण्डल यथार्थ स्थिति में आ जाता है। इसके बाद छठी क्रिया का नाम बालमचलन है।

(६) **बालमचलन**—इस क्रिया को करते हुए सीधे लेटकर अपने दाहिने व बाँये पैर को व अपने दाहिने व बाँये हाथ को इस ढंग से जल्दी–जल्दी चलाना चाहिए जिस प्रकार बच्चे अपनी माता से रूठ कर हाथ–पैर चलाया करते हैं। अर्थात् लेटकर दायें पैर को ऊपर करो तो दाँया हाथ ऊपर की ओर चला जायगा। और बाँया पैर ऊपर की ओर करोगे तो बाँया हाथ ऊपर की ओर चला जायगा। इस प्रकार से दोनों हाथों और पैरों को क्रमशः जल्दी–जल्दी चलाना चाहिए। किन्तु सिर यथार्थ रूप में जमा रहना चाहिए। इस क्रिया का नाम **बालमचलन** है। यह केवल मात्र बालकों के मचलने की नकल है। इसके करने से शरीर में एक स्वाभाविक आह्लाद पैदा होता है। इसके बाद सातवीं क्रिया का नाम बच्चे का ध्यान है।

(७) **बच्चे का ध्यान**—इस क्रिया में अपने को स्थिर भाव से ढीला छोड़ दीजिये व शान्त भाव से लेटे रहकर एक सुन्दर चंचल बच्चे का ध्यान कीजिए, जिसकी आयु कल्पना में दो या तीन साल की आये। यह बच्चा किसी रमणीय उद्यान में खेल रहा हो। ध्यान करने वाला साधक कल्पना से स्वयं भी बच्चे के साथ खेल रहा हो। इस क्रिया के करने से कुछ ही दिन में वह बच्चा दीखने लगेगा और साधक भी अपने आपको बच्चा ही अनुभव करेगा। यह क्रिया इस जीवन तत्व साधन की प्राण भूत है। इस क्रिया को करने से स्वाभाविक आह्लाद प्राप्त होता है। इसी के फलस्वरूप ही सभी रोगों की निवृति स्वतः हो जाती है। इसके बाद आठवीं क्रिया का नाम नाड़ी–संचालन है।

(८) **नाड़ी–संचालन**—नाड़ी संचालन करने के लिए सीधे बैठ जाइये। सीधे बैठ कर अपने पैरों को जितना अधिक से अधिक फैलाया जा सके खोल कर फैलाओ। इस तरह फैलाने पर घुटने के नीचे का भाग और पैरों की पिण्डली बिल्कुल जमीन से सटी रहनी चाहिए। दोनों पैरों के बीच का व्यव–धान कम से कम ७ बालिस्त का होना चाहिए। ऐसे पैर फैलाने के बाद थोड़ा शरीर को आगे की ओर झुका कर दाहिने हाथ की अंगुलियों से बांये पैर के अंगूठे को छुओ और बांये हाथ को एक दम पीछे ले जाओ। उसी प्रकार फिर दाहिने हाथ को घुमाकर पीछे ले जाओ और बांये हाथ से दाहिने पैर के अंगूठे को छुओ। इस प्रकार बराबर चक्राकार घुमाते रहो। इस क्रिया का नाम नाड़ी–संचालन है इसके करने से ग्रहणी नाड़ी अपनी यथार्थ स्थिति में रहती है। मन्दाग्नि की निवृत्ति होती है और शरीर में पूर्णरूपेण रक्त रस का संचार होता है। यह क्रिया भी अन्य क्रियाओं की भांति यौगिक व्यायामों में परम लाभदायक है। इसके बाद नवीं क्रिया का नाम उत्क्षेपण है।

(९) **उत्क्षेपण**—इसमें खड़े होकर अपने हाथ पैर को क्रमशः झटक देना चाहिए। इससे शरीर में

एक प्रकार की नई चेतना–सी आ जाती है और साधक सचेत होकर यथार्थ स्थिति में अन्य कार्यों के लिए तत्पर हो जाता है।

इन क्रियाओं के लिए समय का विभाजन इस प्रकार रखना चाहिए।

(१) सर्वोल्लान–केवल तीन बार समय केवल अधिक से अधिक दो मिनट।

(२) स्कन्ध चालन–पन्द्रह मिनट।

(३) पादचालन–आठ मिनट।

(४) नाभिचालन–पन्द्रह मिनट।

(५) जानुप्रसार–दोनों ओर से तीन बार समय लगभग चार मिनट।

(६) बालमचलन–केवल एक मिनट।

(७) बच्चे का ध्यान–पाँच मिनट।

(८) नाड़ी संचालन–पन्द्रह मिनट।

(९) उत्क्षेपण–केवल एक या दो मिनट।

इसी प्रकार यदि क्रियायें अधिक बढ़ानी हैं तो समय अधिक बढ़ाया जा सकता है। सभी प्रकार की बीमारियों में मेरे गुरुदेव के अपने मन से प्रकट किया हुआ यह जीवन तत्व साधन अमृत के समान परम लाभदायक है। इसमें भी बच्चे का ध्यान सब प्रकार से लोक व परलोक के लिए परम श्रेयस्कर है।

इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा के क्षीण रोगियों के लिए श्री गुरुदेव जी ने अपने मन से अमर तत्व साधन को निकाला।

(२) अमर तत्व साधन–जिसमें केवल क्षीर समुद्र का ध्यान किया जाता है और हाथ–पैरों को इस प्रकार से चलाया जाता है कि जिस प्रकार हम समुद्र में तैर रहे हों। जो साधक श्री गुरुदेव की परम कृपा से अपने को क्षीर–सागर में तैरते हुये देखने लग जाते हैं उनका राज–यक्ष्मारोग बहुत थोड़े दिन में दूर हो जाता है और उनको इतनी प्रसन्नता होती है कि उसमें उनकी समस्त बीमारियाँ भाग जाती हैं। और बहुत ही थोड़े दिन के अन्दर अपने आपको पूर्ण स्वस्थ देखने लगते हैं। प्रथम बार श्री गुरुदेव जी यह जीवन तत्व व अमर तत्व आदि साधन ही लोक–हितार्थ कराया करते थे; किन्तु कुछ समय बाद नेती, धौति, न्यौली, बस्ति, गजकरणी आदि क्रियायें भी अधिकारी देखकर कराने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य आसन, बन्ध, मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं का शिक्षण भी आरम्भ कर दिया, यह सबसे बड़ा काम उन्होंने संसार में आकर किया।

(३) शक्तिपात दीक्षा–जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है, **सिद्धयोग** और **साधन योग**। साधन–योग में मनुष्य साधन करता–करता शनैः–शनैः अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, और सिद्ध योग में सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है और उसकी प्रगति इतनी ऊँची होती है कि जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं प्राप्त कर सकता। सिद्ध योग के दाता पूर्ण सद्‌गुरु सिद्ध योगिराज ही हो सकते हैं, और वही लोग शक्ति–संचार भी कर सकते हैं। इस 'सिद्धयोग' का प्रारम्भ भगवान् सदाशिव से हुआ। पुराणों में हिमालय के घनघोर जंगलों में होने वाले एक सिद्धाश्रम की चर्चा मिलती है, जिसमें भगवान् सदाशिव के शिष्य–प्रशिष्य योगाचार्यगण निवास करते हैं, यह सभी लोग महासिद्ध हैं और समय–समय पर संसार में व्यस्त गृहस्थ जनों को सन्मार्ग–दर्शन के लिए संसार में आया करते हैं। यह लोग सर्व समर्थ महापुरुष हैं यही लोग शक्ति संचार कर सकते हैं। मेरे श्री गुरुदेव भी इन सब की तरह एक अनादि महासिद्ध हैं। उन्होंने संसार में आकर शक्तिपात दीक्षा देनी प्रारम्भ की।

उनके कृपा-फल को प्राप्त कर कितने ही सैंकड़ों की संख्या में साधु जंगलों में समाधि लगा रहे हैं, और तत्व विजयी होकर अपने शरीरों को एक सुन्दर नवयुवक के समान रखते हैं। कितने ही साधु षट्चक्रों का भेदन करके लोक-लोकान्तरों में गमन करने की शक्ति वाले हो गये, और स्वायत्ततनु होकर हिमालय की कन्दराओं में निवास कर रहे हैं। मेरे गुरुदेव योग-योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सन् १९१४ के लगभग हरिद्वार के कुम्भ मेले में प्रथम बार हिमालय से उतर कर आये। जिन जीवों के संस्कार उनके चरणारविन्द में उन्हें ले आते हैं या जो इस पवित्र योग-मार्ग के जिज्ञासु हैं उनको पवित्र योग-मार्ग का अनुयायी बनाकर चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना, हरिद्वार कुम्भ मेले के समय उनके अपने संकल्प से ही उनके कुटुम्बी जनों ने उन्हें पहिचाना और साधारण चर्चाओं में ही तर्क वितर्क करने लगे कि महाराज जी आप कहीं पर किसी भी स्थिति में रहें, अब हम आपको अवश्य ही पहचान लेंगे। श्री महाराज जी ने उन लोगों से कहा कि भाई ! हम साधु हैं तुम्हें हमसे आग्रह नहीं करना चाहिये। तुम अपना कार्य करो हम अपना कार्य करेंगे। किन्तु वे लोग नहीं बदले। आग्रह करते ही रहे। इसी बीच में उन्होंने आश्चर्य देखा कि उनसे बात करते-करते ही श्री गुरुदेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। वह लोग लाख प्रयत्न करने पर भी उनका अन्वेषण नहीं कर सके। अपनी हठ धर्मी का दुष्परिणाम पाकर उन सभी को महान् दुःख हुआ। किन्तु उनको यह भी ज्ञान हो गया कि यह हमारे कुटुम्बी भाई बन्धु ही नहीं हैं किन्तु कोई सामर्थ्यवान् परम योगिराज हैं। श्री गुरुदेव जी की इस प्रभुता को जानकर लोगों ने अत्यन्त विनय की, जिसके फलस्वरूप श्री प्रभु जी वहीं प्रकट हो गये, किन्तु एक बालक के रूप में। उस बालक को यह लोग नहीं पहचान सके। सोचते रहे यह कोई १५-१६ साल का बालक है। कहीं कुम्भ मेले में आया होगा, हमारे पास आकर बैठ गया है। किन्तु इन लोगों की अनभिज्ञता को देखकर उस बालक के रूप में छिपे हुये सर्व समर्थ सिद्धों के सिद्धेश्वर मेरे गुरुदेव उनसे मुस्कराकर कहने लगे कि भाई तुम किस चिन्ता में हो ? किसका अन्वेषण कर रहे हो ? उन लोगों ने कहा; ब्रह्मचारी जी ? हमारे एक भाई साधु रूप में अभी-अभी यहाँ थे, किन्तु पता नहीं कहाँ चले गए हैं ? हमने उनके साथ बड़ा आग्रह किया था, उस आग्रह का हमें भारी पश्चाताप है। जब वह लोग यह कह ही रहे थे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँ कोई ब्रह्मचारी नहीं है, प्रत्युत योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी महाराज हैं। इस अद्भुत घटना को देखकर सभी कुटुम्बी जनों ने निश्चय कर लिया कि यह केवल मात्र हमारे कुटुम्बी ही नहीं हैं; किन्तु इस आकृति में छिपे हुये कोई सर्व-समर्थ योगिराज हैं उसके बाद उन्होंने श्री प्रभुजी, के चरणारविन्द में कोई हठ नहीं की और अपने अपने घरों को लौट गये, कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी को अमृतसर ले जाने का हठ किया, श्री प्रभुजी की स्वयं अपनी इच्छा थी ही इसलिये वह हिमालय से उठकर के आये। उनके हठ को स्वीकार करके अमृतसर चले गये और वहाँ जाकर कुछ समय के लिये पण्डित वेष में रहने लगे। यह श्री प्रभुजी का गृहस्थ वेष था। इस वेष में उनको कोई पहचान नहीं सकता था। केवल अपने निवास स्थान पर रहते हुए जिस समय वन की बात किया करते थे सुनने वाले समझते थे कि इतने घनघोर जंगलों में सम्भवतः नहीं गये होंगे। अचानक इन्हीं दिनों में एक घटना घटी। अमृतसर में हाल दरवाजे से बाहर एक सराय है, जिसको सन्तराम की

सराय कहते है। उसमें एक परम तेजस्वी देदीप्यमान मुख–मण्डल वाले एक महात्मा आकर समाधिस्थ होकर बैठ गये। वह बिलकुल नग्न थे। तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये पिये समाधि स्थिति में वह महात्मा वहीं बैठे ही रहे। सारे शहर में उनकी प्रख्याति फैल गई। दर्शकों की भारी भीड़ उनके पास एकत्र हो गई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में जाकर गृहस्थी लोगों ने प्रार्थना की कि श्री महाराज जी ! आप बड़े–बड़े जंगलों में हो आये हैं, किन्तु अभी तक आपको इस प्रकार के सिद्धयोगिराज जी नहीं मिले होंगे जैसे महात्मा सन्तराम की सराय में आकर बैठे हैं ? वह तीन दिन से बिलकुल निराहार हैं और पत्थर की मूर्ति की तरह से बैठे हैं, न हिले हैं न डुले हैं। चलिये आपको भी उनके दर्शन करावें। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया भाई ! हमें रहने दो, तुम्हीं दर्शन कर आओ। जब तीन रात्रि से बैठे हैं तो अच्छे तो है ही। किन्तु लोगों ने बड़ी भारी हठ की। लोगों के मन में यह भावना थी कि उस महात्मा को देखकर श्री गुरुदेव जी आश्चर्य चकित हो जावेंगे और कहेंगे कि हाँ, यह तो कोई अवश्य सिद्ध योगिराज है। किन्तु बात कुछ और ही थी। श्री प्रभु जी उन लोगों के आग्रह करने पर सन्तराम की सराय में गये। जहाँ वह महात्मा समाधि लगाकर बैठे हुये थे, धीरे–से उनके पीछे जाकर खड़े हो गये। लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि और लोग सामने खड़े हैं और यह पीठ के पीछे खड़े हैं। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि महात्मा के शरीर में एक कम्पन पैदा हुआ। उस कम्पन के साथ उनके प्राण–कोष ब्रह्माण्ड से नीचे आ गये। महात्मा सचेत होकर जाग उठे और बड़ी तीव्रता के साथ खड़े होकर परम करुणार्णव मेरे श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में गिर पड़े और चरणों से लिपट गये। महात्मा इतने रोये कि श्री प्रभु जी के बहुत समझाने पर भी उनके आँसू बन्द नहीं होते थे। श्री प्रभु जी ने उनको दोनों हाथों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा—बेटा ! रोते क्यों हो? मैंने ही तुमको शतपथ से बुलाया है तुम्हारी समाधि अपूर्ण थी, आज से वह पूर्ण हो जायेगी। और तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जाएगी। आकाश–गमन आदि सब ठीक हो जायगा। महात्मा ने बड़ी कठिनता से श्री प्रभु जी से हाथ जोड़कर प्रार्थना की। प्रभो ! हे सर्वशक्तिमान् ! मेरे रोने का केवल एक ही कारण है। मैं आपका मन्द बालक हूँ। तीन दिन तीन रात मेरी कठोर परीक्षा के बाद आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मैं तड़पता रहा चरणारविन्दों के दर्शन के लिए, किन्तु आपके चरणारविन्द में बहुत से स्त्री पुरुषों का जमघट होने के कारण मैं नहीं आ सका और आप दर्शन देने के लिए नहीं आये। आज मेरा यह शुभ दिन है। पता नहीं मेरे कौन से पुण्य प्रारब्ध से प्राणिमात्र के अन्तर्द्रष्टा श्री प्रभुजी ! आपने मुझे आकर कृतार्थ किया है। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को कुछ समय अपने पास रखकर हिमालय भेज दिया। जो लोग श्री प्रभुजी के साथ सन्तराम की सराय में गये थे, उनके आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं रहा। वह लोग भली प्रकार जान गये, इस विप्र वेष में छिपे यह अवश्य कोई सर्वसमर्थ महापुरुष है। यह पहली घटना थी जिससे कुछ सर्व साधारण लोग मेरे गुरुदेव के स्वरूप को कुछ–कुछ समझने लगे। यहाँ से ही शक्तिपात और सब प्रकार के योग प्रचार का कार्य आरम्भ हुआ। पाठकगण समझते रहें कि सद्गुरुदेव कौन होता है और उनके कार्य किस प्रकार के हुआ करते हैं।

* * *

सम्पादकीय

'योग मार्तण्ड आनन्दकन्द प्रभु रामलालजी महाराज

सत्कीर्तिर्विमलम् यशः सुकविता पाण्डित्यमारोग्यता।
वादेवाक्पटुता कुलेचतुर्ता गम्भीर्यमक्षोभ्यता।।
माङ्गल्यं प्रभुता गुणे निपुणता मस्य प्रसादात्भवेत्।
तं वन्दे शिव रूपिणं निज गुरुं सर्वार्थ सिद्धि प्रदम्।।

आनन्द कन्द महाप्रभु रामलाल जी महाराज हिमालय के ऐसे अजर अमर कल्पान्तजीवी योगेश्वर हैं जो समय–समय पर हिमालय से अवतरण कर भवताप व त्रयताप से संतप्त संस्कारी जीवों को योग का अमर पथ दर्शाते रहते हैं। इस कार्य को करने के लिये उन्हें अपने मूल देह से आने की आवश्यकता नहीं होती। वे नाना योग–देह निर्मित कर एक ही समय पर अनेक स्थानों पर विद्यमान रहकर योग के इस अमर सन्देश को संस्कारी व अधिकारी वर्ग में सम्प्रसारित व संचारित करते रहते हैं। **'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'** के अनुसार उनके इस प्रकार से नानादेह में व्यक्त रहकर इस अमरदात्री विद्या को प्रचारित व संस्थापित करने के रहस्य को सामान्य जन बिल्कुल नहीं जान पाता। सदाशिव स्वरूप अविनाशी त्रिकालद्रष्टा एवं सर्वज्ञ ये परम योगेश्वर काल खण्ड से अबाधित होने के कारण इस भू–लोक के प्रलय हो जाने पर आने वाली नई पीढ़ी को योग रूपी परम धर्म का दिव्य ज्ञान व विज्ञान देकर मानव को परम श्रेयस की ओर लगाते रहते हैं। उपनिषदों में उनके इस प्रकार की योग लीला का संकेत मिलता है–**'अचिन्त्य शक्तिमान योगी नाना रूपाणि धारयेत् संहरेत पुनस्तानि सूर्यो रश्मिगणानिव'**। अर्थात् अचिन्त्य शक्तिमान वे परमयोगेश्वर नाना रूपों को धारण कर अपना योग प्रचार रूपी दिव्य कर्म करते है और फिर उन निर्मित रूपों को पुनः इस प्रकार से समेट लेते हैं जिस प्रकार से सूर्य अपनी रश्मियों को समेट लिया करते हैं। उनके योगेश्वर्य युक्त लीलाशरीरों के विषय में मानव तो क्या बड़े–बड़े योगी और देवता भी नहीं जान पाते। इसी बात की पुष्टि करते हुये गीता में भगवान अपने श्रीमुख से कहते है–

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।।

अर्थात् अविवेकी लोग मेरे सर्वोत्तम एवं अविनाशी स्वरूप को न जानकर अन्यों की भांति मानुषी शरीर धारी ही समझते हैं।

परम योगेश्वर श्री प्रभु जी अपने तेजांश का किसी अधिकारी शरीर में आधान कर अपने संकल्प के अनुसार भी कार्य करा लिया करते हैं। संसार में कई महापुरुष आते है अपने समय व वातावरण के अनुसार बड़े–बड़े कर जाया करते हैं किन्तु उनके अन्दर यह असाधारण क्षमता कहाँ से आई ? संसारी लोग इस बात को नहीं जान सकते। नाम और मान तो उसी सामने आने वाले शरीर को मिलता है किन्तु कार्य क्षमता

योगेश्वरों के संकल्प से आया करती है। आनन्द कन्द सद्गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने मुखकमल से कहा करते थे कि योगी अन्धकार में भटकने वाले दुनियां के लोगों को ज्ञान का प्रकाश देते हैं। किन्तु उन लोगों को इस बात का ज्ञान नहीं हो पाता कि यह प्रकाश कहाँ से व किससे आ रहा है। योगी लोग प्रकाश दिखाकर अपना पीठ फेर लेते हैं। अर्थात् अपने रूप का ज्ञान नहीं कराते। सद्गुरु की महानता भी यही है कि वे सब कुछ करने वाले होने पर भी कभी स्वयं को सामने नहीं लाते। संसार में मनुष्य थोड़ा बहुत धार्मिक या सार्वजनिक कार्य करता है तो वह उसका सर्वत्र ढिंढोरा पीटता है। किन्तु वे सर्वात्मा जो यह कहते हैं **'मया ततमिदं सर्वम्' 'मत्त: सर्वं प्रवर्तते'**। अर्थात् मुझ से ही सब कुछ हो रहा है वे भी अपने रूप को सब के सामने प्रकट करने की इच्छा नहीं करते। यही उनके व्यक्तित्व का आश्चर्यजनक वैशिष्ट्य है।

परम गुरुदेव श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज का अवनिमण्डल पर आने का मुख्य प्रयोजन था कि वे सद्गुरु सत्ता रूप अपने सदाशिव रूप के जन्म जन्मान्तर के संस्कारी बालकों को योग का अमर मार्ग दिखाकर उन्हें अपनी सत्ता में मिला लें। महाप्रभु जी ने इस कलिकाल में मानव देह में आकर जिस प्रकार से पतित जीवों पर कृपायें की हैं ऐसा उदाहरण मिलना अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने कितनों को ही अपने संकल्प व शक्तिपात से क्षणभर में ही भूतजयी अमर सिद्ध बनाकर हिमालय में समाधिस्थ बिठा दिया है। योगीराज हरिहरानन्द जी की घटना सर्वसाधारण की ज्ञात घटना है। उनके अतिरिक्त भी अनेक सिद्ध योगिराज उन्होंने बना दिये, जिनका विशेष वर्णन नहीं मिलता है किन्तु श्री प्रभु जी अपने श्रीमुख से कभी–कभी ऐसी घटनायें बता दिया करते थे। श्री प्रभु जी ने एक पतिता नारी 'रामरती' का उद्धार कर बारह वर्ष की अखण्ड समाधि दे डाली और उसे परम योगिनी बना दिया। आज वह भी संभवत: हिमालय की कन्दरा में कहीं समाधिस्थ है। 'सिद्धयोग' की परम्परा को अक्षुण्य बनाये रखने में विशेष स्थान जिन महापुरुषों का है उन्हें आप ने ही सिद्ध बना कर संसार को दिया। पूज्य सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, श्री मुल्खराज जी महाराज, श्री नरसिंह मूर्ति जी महाराज, योगिनी द्रौपदी माता जी आदि उनके प्रधान शिष्यों में हैं जिन्होंने लाखों जिज्ञासुओं को योग का दिव्यामृत पान कराया है और आज असंख्य साधक अपनी साधनाओं में लगे हुये हैं। पूर्ण योगी सद्गुरु के चरण शरण अत्यधिक पुण्यों के संचित होने पर ही मिला करते हैं। यद्यपि इस कलिकाल में पुण्यों का संचय करना भी कठिन कार्य है। श्री प्रभु जी की कही हुई बात को समझाते हुये गुरुदेव जी हम लोगों को बतलाया करते थे कि 'प्रभु जी कहा करते थे कि हमारे संस्कारी बच्चों के इतने प्रबल पुण्य नहीं हो पाते जिससे वे हम तक पहुँच पाते।' किन्तु थोड़े पुण्यों के बावजूद भी प्रभु जी ने संस्कारी बच्चों को अपने पास खींच लिया है। सद्गुरुदेव के चरण कमलों की भक्ति चिन्तामणि के समान सकल मनोरथों को पूर्ण करने वाली होती है उनके चरणों का उपासक संसार के समस्त सुख भोग एवं मोक्ष दोनों ही पा जाया करता है। गुरुदेव के चरणों की उपासना के महत्व को न जानकार मूढ़ लोग नाना प्रकार के यज्ञ, दान, तप, तीर्थ और व्रतों के पारायण में लगे रहा करते हैं ये सब पुण्यार्जन के साधन तो अवश्य हो सकते हैं किन्तु इष्ट दर्शन या आत्म दर्शन के मूल साधन नहीं होते। जब तक मनुष्य सिद्धशक्ति

को प्राप्त नहीं करता तब तक वह मोक्ष का अधिकारी नहीं हो सकता। सब के हृदय में व्याप्त सर्वोच्च सत्ता का नाम ही सद्गुरू सत्ता है। किन्तु जब तक यह सत्ता अभिव्यक्त होकर कृपा व शक्ति संचार नहीं करती तब तक कल्याण नहीं हुआ करता। आत्मदर्शन का एकमात्र कारण बताते हुये उपनिषद् कहते हैं— **'यमेवैष वृणुते तनैव लभ्य:'** जब तक सद्गुरू साधक को वरण नहीं कर लेते तब तक उसे आत्म–दर्शन या सद्गुरू सत्ता की प्राप्ति संभव नहीं हो सकती।

जो लोग सद्गुरू को केवल साधन का अंग मानकर उन्हें केवल मार्ग दर्शक के रूप में ही मानते हैं वे भूल करते हैं। सद्गुरु स्वयं साध्य है किन्तु मार्ग दर्शक भी वे स्वयं बन जाते हैं। इस प्रकार से वे मार्ग दर्शक भी हैं तथा मंजिल भी वही हैं। किन्तु यह बात केवल सिद्ध सद्गुरुओं के लिये लागू होती है साधारण गुरुओं के लिये नहीं। सिद्ध सद्गुरु को भगवान सदाशिव ने **'तारक ब्रह्म'** की संज्ञा दी है। सद्गुरु को प्राप्त करने की विद्या का नाम ही योग है। वे योग के मूर्तिमान रूप हैं, योगाधीश्वर हैं। उनमें योग पूर्णतया समाहित रहता है, इसलिये सद्गुरु की सर्वोच्चता एवं महनीयता है। जीव जब तक योग शक्ति सम्पन्न नहीं हो जाता तब तक सद्गुरु सत्ता की अखण्ड प्राप्ति उसे हो नहीं सकती। सिद्ध गुरु जब शिष्य को एक बार वरण कर लेते हैं फिर उस पर निरन्तर कृपा वर्षा करते रहते हैं। उनके अमोघ संकल्प से ही शिष्य का जीवन संचालित रहा करता है। वे प्रतिक्षण अपनी योग शक्ति से शिष्यों की रक्षा करते रहते हैं। श्री प्रभु जी करुणा के सागर हैं। करुणा ही उनका स्वभाव है। इसी कारण से अपने चिन्तन करने वाले का सब प्रकार से रक्षण करते हैं। संसार के इस भयानक भवाटवी में मनुष्य बहुत असहाय, अशक्त और विवश प्राणी है। वह अपनी शक्ति से अपनी रक्षा कदापि नहीं कर सकता। उनकी क्षमतायें अति सीमित हैं। ऐसे में गुरुदेव श्री प्रभु जी ही सब के सहायक बन सकते हैं। जगद्गुरु श्री कृष्ण चन्द्र ने **'बहिरन्तरश्च भूतानाम पर चरमेव च'** तथा **'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित:'** कहकर अपनी व्यापक सत्ता का परिचय दिया है। परम सद्गुरु कृष्ण चन्द्र की वाणी पर दृढ़ विश्वास और आस्था रखकर जो सब प्रकार से सद्गुरु के परायण हो जाते हैं उन्हें ही गुरुकृपा का अनुभव लाभ मिला करता है। धन्य हैं ऐसे लोग जो अनन्य गुरुनिष्ठ हैं और गुरुकृपा के भाजन बने हुये हैं। श्री गुरुदेव की सर्वज्ञता एवं व्यापकता का बोध कराते हुये सद्गुरुदेव कहा करते थे 'श्री प्रभु जी नैपाल हिमालय में बैठे हुये ही अपने सब बच्चों को देखते रहते हैं'। श्री प्रभु जी को **'सर्वशरीरग:'** 'सर्वभूतस्थितम्' कहा जाता है। अर्थात् वे सब के शरीरों के अन्दर भी प्रविष्ट हैं। जो प्रभु जी को सब का मूल कारण मानकर उनकी सर्वत्र विद्यमानता का अनुभव करते हैं उन पर प्रभु जी अहर्निश कृपा करते रहते हैं। उनका ही जीवन संसार में आनन्दमय एवं शान्तिमय बना हुआ है।

आनन्द कन्द श्री प्रभु जी ने जगत कल्याण के लिये अपने शरीर को प्रकट करने के लिये श्री रामनवमी का परम शुभ दिन चुना है। हम लोगों के लिये यह अति पावन दिन है। इस पुण्य पर्व पर हम सब बालक उनके पतित पावन चरणारविन्द में कोटि–कोटि नमन करते हैं।

***

सन्तों की वाणी में 'श्रीगुरुदेव'

श्री भुवनेन्द्र 'झा'

अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चरा चरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥
अज्ञान तिमिरांधस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवेनमः॥

आज के युग में श्री गुरुदेव जी की महिमा का जो रूप देखने में आता है, वह भिन्न–भिन्न भावनाओं में आराधना करने का अपना ढंग है। जिस प्रकार कि तान्त्रिक व वैदिक अनुष्ठान आदि। इनमें कहीं श्री गुरुदेव को केवल अनुष्ठान पूर्ति कराने के लिए आचार्य का रूप ही दिखाया है, क्योंकि वह इष्टदेव की प्राप्ति कराने हेतु सहायक हैं। अतः पूज्य भी है। और कहीं गुरुदेव व इष्टदेव अभिन्न हैं। सन्त मतों में गुरुदेव ही सर्वोपरि आराध्य हैं जिनकी कृपा से ही ईश्वर का साक्षात् दर्शन सुलभ हुआ। तत्व दर्शी सन्त कबीरदास जी ने तो यहाँ तक कह दिया कि स्वयं भगवान् और गुरुदेव यदि एक साथ दर्शन देने की कृपा करें तो प्रथम श्री गुरुदेव जी को ही प्रणाम करना चाहिए क्योंकि इन्हीं की कृपा दृष्टि से भगवान् के दर्शन पाकर कृतार्थ हुए हैं। गुरुदेव की कृपा बिना ही हरि कैसे प्रकट होते—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दिये मिलाय॥

जो कुछ भी इस जगत् में है, वह सब यदि गुरु महिमा पर न्यौछावर कर दिया जाय तो भी कुछ नहीं है। उनका वर्णन किया ही नहीं जा सकता। वे मनुष्य अन्धे हैं जो गुरुदेव को उस परम तत्व से भिन्न समझते हैं, भगवान् के रूठने पर गुरुदेव उन्हें फिर मिला सकते हैं, उनके पास शरण मिल जायेगी, परन्तु गुरुदेव के रूठने पर कहीं त्रिभुवन में भी ठिकाना नहीं मिलने का। यदि अपना शीश देकर भी गुरुदेव की प्राप्ति हो सकती है तो भी सौदा सस्ता है। सद्गुरु की कृपा से ही समदृष्टि—मिलने पर सभी भ्रम व विकार मिट जाते हैं और यत्र—तत्र सर्वत्र उन्हीं का एक स्वरूप दिखाई देता है। यह परम योगी सन्त कबीर ने अपने स्पष्ट वचनों में कह दिया है—

सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय।
सात समुद्र की मसि करूँ गुरु—गुन लिखानजाय॥
कबीर ते नर अंध है गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर॥
गुरु बड़े गुरु गोविन्द तें, मन में देखु विचारि।
हरि सुमिरे सो वार है, गुरु सुमिरे सो पार॥
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान॥
समदृष्टि सतगुरु किया, मेटा भरम विकार।
जहाँ देखो जहाँ एकही, साहिब का दीदार॥

सब प्रकार से परिपूर्ण सद्गुरुदेव की प्राप्ति ही इस भवसागर से पार लगा सकती है अन्यथा—

जाका गुरु है आंधरा, चेला निपट निरन्ध।
अन्धे—अन्धा ठेलिया, दोऊ कूप परन्त॥

उन्हीं पूर्ण सद्गुरुदेव की प्राप्ति करने के लिए कबीर दास जी बार—बार चेतावनी देते हैं कि रे—मूर्ख व्यर्थ में सोकर क्यों अपनी इस अमूल्य श्वांस को नष्ट करता है। जाग ! ये प्रत्येक श्वांस हीरा व लाल के समान अमूल्यनिधि है। ऐसे सद्गुरु के चरणों में इन्हें गिन—गिन कर सौंप दे अर्थात् एक भी व्यर्थ न जाने दे—लय कर दे—

कबीर सोया क्या करै, जागन की कर चौंप।
ये दम हीरा लाल है, गिनि—गिनि गुरु को सौंप॥

उन गुरुदेव को तज कर, जिनकी कृपा से

सहज में ही यह जीव छुटकारा पा लेता है, तू इधर–उधर क्यों भटकता है सद्गुरु के बिना कोई भी तेरा कार्य नहीं चल सकता–

मन तू हंसन से साहिब तजि, भटकत काहे फिरै।
सतगुरु छाँड़ि और को ध्यावे, कारज एक न सरै।।
साधुन सेवा कर मन मेरे, कोटि व्याधि हरै।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सहज में जीव तरै।।

बार–बार कबीरदास जी याद दिलाते हैं कि अरे ! जीव इस सुन्दर मनुष्य शरीर को पाकर गर्भ में दिये हुए वचनों को भूल गया। जिन गुरुदेव की कृपा से तू बाहर आया था–उन सृजनहार गुरुदेव को अब भी भज ले।

भजिले सिरजन हार, सुघर तन पाइकै।।
गर्भवास में रह्यो कह्यो, मैं भजिहों तोही।
निसदिन सुमिरों नाम, कष्ट से काढ़ो मोही।।
चरनन ध्यान लगाइकै, रहौं नाम लौ लाय।
तनिक न तोहि बिसारिहौं, यह तन रहै कि जाय।।
इतना कियौ करार, काढ़ि गुरु बाहर कीन्हा।।
भूलि गयौ वह बात भयौ माया आधीना।।

मन अबकी बार तो संभल जा। अनेकों जन्म तैंने धोखे में दाँव पर लगा दिये और बिना गुरु के बाजी हारता रहा व फिर जन्म–मरण के चक्कर में अनेकों बार फँसता रहा है। तेरे चारों तरफ काल का घेरा पड़ा हुआ है घट–घट व्यापक गुरु से तू अब तक क्यों अलग रहा है–

मन रे अबकी बेर सम्हारो।
जन्म अनेक दगा में खोये, बिन गुरु बाजी हारो।।
बालापने ज्ञान नहिं तन में, जब जन्मो तब बारो।
तरुनाई सुख बास में खोयो, बाज्यो कूच नगारो।।
सुत दारा मतलब के साथी, तिनको कहत हमारो।
तीन लोक औ भवन चतुरदस, सबहि काल को चारो।।
पूर रह्यो जगदीश गुरु तन वासे रह्यो नियारो।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब घट देखन हारो।।

वास्तव में यदि कहीं छुटकारा पाने का ठौर ठिकाना है तो यह केवल सद्गुरु नाम आधार है। नहीं तो यह सब कुछ एक कागज की पुड़िया के समान है जो एक बूंद से घुल जाती है और जीव बीच भंवर में बिना सहारे पलराता रहता है–

रहना नहिं देश बिगाना है।
यह संसार कागज की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है।
यह संसार काँटों की बाड़ी, उलझ–उलझ मर जाना है।।
यह संसार झाड़ अरु झाँखर, आग लगे जलजाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरुनाम ठिकाना है।।

ऐसे सतगुरु छल कपट को छोड़कर भक्ति करने से, सेवा और विनम्रता से सहज में ही प्राप्त हो जाते हैं–

ऐसी भगति करो घट भीतर, छाँड़ि कपट चतुराई।
सेवा बंदगी अरु अधीनता, सहज मिलें गुरु आई।।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगु बात बताई।
यह दुनियाँ दिन चार दहाड़े, रहो अलख लौ लाई।।

काल चक्र घसीट–घसीट कर यमराज के फन्दे में घेर कर ला रहा है। जिससे बचने का एकमात्र उपाय कबीरदास जी ने केवल उस परम् सद्गुरु की ही शरण लेना बताया है। उनके चरणों में नेह लगाने से, चित्त लगाने से ही यम के फन्दे से छूट कर मोक्ष पा जाता है–

आखिर काल घसीटिहै, परिहौ जम के फन्द।
बिन सतगुरु नहिं बाचिहौ, समुझि देख मतिमंद।।
सुफल होत यह देह, नेह सतगुरु सों कीजै।
मुक्तीमारग जानि, चरन सतगुरु चित दीजै।।

पंजाबी सन्त अमरदास जी के मतानुसार राम–राम कहने से राम नहीं मिलते, जब तक कि गुरुदेव की कृपा नहीं हो जाती। तभी राम कहने का फल मिलता है–

राम–राम सब कोई कहै, कहिये रामु न होई।
गुरु परसादी रामु मनि बसै, ता फल पावै कोई।।

ईश्वर की भक्ति भी बिना सद्गुरु के नहीं मिलती है। सन्त परसराम जी के वचनों में देखें–

"धर चरण में भक्ति कराओ,
जो सद्गुरु के शरणै आओ।

सतगुरु बिना भक्ति नहीं सूझै,
भरम करम में जीव अलूझै।।
यह सब कुपच किरीकट टालै,
पल पल अमृत जड़ी संभाले।
सतगुरु वैद्य कहे ज्यूं कीजे,
अग्या मेटि पाँ नहिं दीजे।।
राम नाम अम्मर जड़ी, सतगुरु वैद्य सुजान।
जन्म मरण वेदन कटे, पावे पद निरवान।।"

उन्होंने गुरुदेव के पास केवल जाने में ही कितना ऊँचा फल मिल जाता है इन पंक्तियों में कह दिया है—

चरणों सूं चल जाइये, श्री सतगुरु के पास।
पैड–पैड असमेध जग्य, फल पावन्त निज दास।।

एक–एक पग गुरुदेव की राह में चलने वाले को एक–एक अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है। इतना ही नहीं गुरु भक्ति में अंग प्रत्यंग धन्य हो जाता है। जैसे—

सीस निवावो परसराम, कर्म पोट गिर जाय।
इस विधि सीस सुनाथहुय, सतगुरु चरण लगाय।।
श्रवणों सुनिये परसराम, सतुगुरु शब्द रसाल।
ज्ञान उदय अज्ञान मिट, टूटे भ्रम जंजाल।।
करो दण्डवत देह सूं, ज्यूं छटे जम दण्ड।
परसराम निर्भय रहो, सप्त द्वीप नव खण्ड।।
करो परिक्रमा प्रेम सूं, सनमुख बैठो आय।
फेरा आमण मरम का, सहजों सूं टल जाय।।
मुख सूं महा प्रसाद ले, पावे उत्तम दास।
ऐसे मुक्ख सुनाथ हइ, वायक विमल प्रकास।।
नख चख सब नर देह का, या विधि उत्तम होय।
भाव भक्ति गुरु धर्म बिन, पशु समान नर लोय।।

सन्त मानपुरी जी की वाणी में—

हरि बोलो अखियाँ खोलो,
करि करि दरशन डोलो।
ज्ञान गुरु को सोई पावे,
जो कोई होवे भोलो।।
नर देहि आकर मिथ्या जीवन,
नाम धनी को धोक।
समझत ना समझावत डोले,
हँसत होय कै लोक।।
आसा छोड़ निरासा होना,
तजि दुख हो निरदोख।
मानपुरी सतगुरु पर सादे,
पावे सुख सन्तोष।।

स्वामी चरणदास जी कहते हैं कि यदि सद्गुरु की कृपा का साथ मिल जाता है तो इस राह पर मिलने वाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद—मात्सर्य आदि चोर जो रास्ता रोक कर लूट लेते हैं वह सब दूर भाग जाते हैं।

मनुआ राम के ब्यौपारी।
अब के खेप भक्ति की लादी,
बनिज कियो है भारी।।
पाँचों चोर सदा मग रोकत,
इन सों कर छुटकारी।
सतगुरुनायक के संग मिलि चल,
लूट सकें नहिं धारी।।

इन्हीं चरणदास जी की शिष्या सहजोबाई ने अपना सर्वस्व गुरुदेव के चरणों में न्यौछावर कर दिया है। तभी तो गुरुदेव पल—पल पर अपने शिष्य की बालक की तरह रक्षा करते हैं—

हम बालक तुम माय हमारी,
पल—पल माहि करो रखवारी।।
निसदिन गोदी ही में राखो।
इत चित वचन चितावन भाखो।।
विषै ओर जाने नहिं देवो।
दुरि—दुरि जाऊँ तो गहि—गहि लेवो।।
मैं अनजान कछु नहिं जानूं।
बुरी भली को नहिं पहचानूं।।
जैसी—तैसी तुम्हीं चीन्हेव।
गुरु को ध्यान खिलौना दीन्हेव।।

तुम्हरी इच्छा ही से जाऊँ।
नाम तुम्हारा अमृत पाऊँ।।
दृष्टि तुम्हारी ऊपर मेरे।
सदा रहूँ मैं सरनै तेरे।।
मारौ झिड़को तो नहिं जाऊँ।
सरिक-सरिक तुम्ही पै आऊँ।।
चरनदास है सहजो दासी।
हो रच्छक पूरन अविनाशी।।

गुरु-भक्ति पराकाष्ठा पर पहुँचा दी है इन पंक्तियों में-

राम तजूँ पर गुरु न बिसारूँ।
गुरु के सम हरिकोन निहारूँ।।
हरि ने पाँच चोर दिये साथा।
गुरु ने लई छुड़ाय अनाथा।।
हरि न माया जाल में गेरी।
गुरु ने काटी ममता बेरी।।
हरि ने राग भोग उरझायो।
गुरु में आतम रूप दिखायो।।

ऐसी-ऐसी युक्तियाँ दे-देकर गुरुदेव के प्रति अपूर्व श्रद्धा का परिचय सहजो बाई के काव्य में ही मिलता है।

अष्टादश और चार षट, पढ़-पढ़ अर्थ कराहिं।
भेद न पावे गुरु बिना, सहजो सब भरमाहिं।।
सब पर्वत स्याही करूँ, घोरूँ समुन्दर जाय।
सब पृथ्वी कागद करूँ, गुरु स्तुति न समाय।।

गुरु की स्तुति कहाँ लों कीजै।
बदला कहा गुरुन को दीजै।।
गुरु का बदला दिया न जाई।
मन में उपजत है सकुचाई।।
इन नैनन जिन राम दिखाये।
बन्धन कोटि काट मुकलाये।।
अभय दान दीनन को दीन्हे।
देखत आप सरीखे कीन्हे।।
गुरु की कृपा अपरम्पारे।
गुण गावत सम रसना हारे।।
मौन गहूँ अस्तुति का करूँ।
बार-बार चरणन शिर धरूँ।।
चरणदास महिमा अधिकाई।
सर्व सँवारे सहजो बाई।।

सहजो गुरु दीपक दियो, रोम-रोम उजियार।
तीन लोक दृष्टा भये, मिटो भरम अँधियार।।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्री रामचरित मानस की रचना में चौपाई का आरम्भ ही श्री गुरुदेव की भक्ति से किया है जिनकी केवल चरणरज धारण कर भगवान् श्री रामचन्द्र जी के लीला चरित्र का दिग्दर्शन कराने में समर्थ हुए है-

बन्दौं गुरु पद-पदम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
अमिय मूरियम चूरन चारू।
समन सकल भवरुज परिवारू।।
श्री गुरु पद नख मणि गण ज्योती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हित होती।।

प्रथम उनके चरण-कमलों की परम रुचिकर अनुराग भरी सुगन्ध पाकर तथा उनके चरणों के नखों से निकलती हुई अनेक मणियों के तुल्य आभा को प्राप्त कर अर्थात् नख रूपी मणि की चमक का दिव्य प्रकाश हृदय में पाते ही श्री गुरुदेव को साक्षात् भगवान् 'नर रूप हरि' समझ लिया-

बंदउँ गुरुपद कंज, कृपा-सिन्धु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर।।

उनकी महिमा कितने बड़े शब्दों में वर्णन की है कि-

राखै गुरु जो कोप विधाता।
गुरु विरोध नहिं कोउ जग त्राता।।
गुरु के बचन प्रतीति न जेही।
सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही।।
गुरु बिन भव निधि तरै न कोई।
जो विरंचि शंकर सम होई।।

भगवान् की असीम कृपा से तथा जन्म जन्मान्तरों

के पुण्य के फल स्वरूप जब इस जीव को सद्गुरु की प्राप्ति हो जाती है तो सभी संशय, भ्रम आदि का निवारण होकर इस दुःख रूपी संसार सागर से वह पार हो जाता है।

भूमि जीव संकुल रहे गये सरद रितु पाय।
सतगुरु मिले ते जाईं जिमि संशय भ्रम समुदाय।।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र जी महाराज ने स्वयं गुरु–भक्ति का जगत् के सम्मुख एक आदर्श रख दिया है। गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में ही देखें जिस समय मुनि श्री विश्वामित्र जी शयन करने जाते हैं तब दोनों भाई उनके चरणों को धीरे–धीरे दबाते हैं–

मुनिवर सयन कीन्ह तब जाई।
लगे चरण चापन दोऊ भाई।।
जिनके चरण सरोरुह लागी।
करत विविध जप जोग बिरागी।।

गुरुदेव की आज्ञा पाकर नगर घूमने दोनों भाई जाते हैं परन्तु लौटते समय जो थोड़ा विलम्ब हो जाता है उससे मन में कितना त्रास मानते हैं कि लौट आने पर प्रेमपूर्वक अत्यन्त विनय करते हुए खड़े रह जाते हैं व उनकी आज्ञा पाकर ही बैठते हैं–

कौतुक देखि चले गुरु पाहीं।
जानि विलम्ब त्रास मनमाहीं।।
सभय सप्रेम विनीत अति,
सकुच सहित दोऊ भाय।
गुरु पद पंकज नाइ सिर,
बैठे आयसु पाय।।

चौदह वर्ष के वनवास की लम्बी अवधि में गुरुदेव के वियोग में किस प्रकार रहे यह उनके लौट कर अयोध्या आने पर मुनिवर वशिष्ठ के चरण कमलों के प्राप्त होने की व्याकुलता का दृश्य सभी अयोध्यावासियों ने देखा कि–

धाइ धरे गुरु चरण सरोरुह।
अनुज सहित अति पुलक तनोरुह।

और कहते हैं–

गुरु वशिष्ठ कुल पूज्य हमारे।
इनकी कृपा दनुज रण मारे।।

गुरुदेव की कृपा से ही गोस्वामी तुलसीदास जी को श्री रामचरितमानस की रचना करने की दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई–

दलन मोह तम सो सप्रकासू।
बड़े भाग्य उर आवहि जासू।।
सुझहि राम चरित मनि मानिक।
गुप्त प्रकट जहँ जो जेहि खानिक।।
गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिय दृग दोष विभंजन।।
तेहि कर विमल विवेक विलोचन।
बरनऊँ रामचरित भव मोचन।।

अनेकों सन्त महापुरुषों ने श्री गुरुदेव जी की महिमा का वर्णन अपनी रचनाओं द्वारा मुक्त कंठ से किया है। इस लेख में केवल उन महापुरुषों में सन्त कबीरदास जी, अमरदास, परसराम, मानपुरी चरणदास, सहजोबाई एवं गोस्वामी तुलसीदास जी आदि की रचनाएँ समयानुसार सुगमता से प्राप्त हो सकी हैं। यह भी योग–योगेश्वर श्री सद्गुरुदेव जी महाराज की इस बालक पर परम कृपा हुई कि सन्तों की वाणियों में सर्व–शक्तिमान सर्वाधार श्री गुरुदेव भगवान् की महिमा की झलक मात्र दिखाकर रोम–रोम से कृतार्थ कर दिया है। उनकी महिमा का पार क्या बिना उन्हीं की कृपा के कोई पा सका है–

'सो जाने जिनि देहु जनाई।'

किसी सन्त ने लिखा है–

व्यापक ब्रह्म विचार अखण्डित,
द्वैत उपाधि सबै जिन हारी।
शब्द सुनाय सन्देह मिटावत,
सुन्दर वा गुरु की बलिहारी।।

***

किमस्ति योगः

(अष्टादशी श्रृंखला)

रचनाकार : **द्वारका प्रसाद शर्मा**, लखनऊ।

(१) प्रारंभे हि यथा पूर्वं, व्याख्यानं निजतुष्टये।
समागृह्य तु सूत्राणि, योगदर्शन शास्त्रत:।।

(२) प्रभूणां च गुरूणां च, ध्यात्वा पादौ स्वमानसे।
योगभूमौ पदक्षेपं, तदनु कर्त्तुमुत्सहे।।

परमप्रभु श्री रामलाल जी महाराज तथा आराध्य श्री सद्गुरुदेव के चरणारविन्दों को अपने मन में ध्यान कर तत्पश्चात् ही मैं इस पवित्र योग भूमि पर पदन्यास का उत्साह कर रहा हूँ। योगदर्शन शास्त्र के सूत्र को ग्रहण करते हुए पूर्व की भांति आत्म तुष्ट्यर्थ तथा सुधी योगपरायण जिज्ञासु साधक वृन्द के निमित्त निम्नांकित एक सूत्र का अवलम्ब ले मैं स्वीय श्लोकों में बद्ध तथा भाषानुवाद समेत व्याख्या इस अठारहवीं श्रृंखला के माध्यम से करने के लिये तत्पर हुआ हूँ।

सूत्रं तदर्थ सहितम्—**विवेक ख्यातिरविप्लवा हानोपाय:**। (द्वितीय पाद: सूत्र २६)

(३) विवक्षितं तु सूत्रेऽस्मिन्, हानोपाय: कथं भवेत्।
निश्चयेन प्रकर्तव्यं, विवेकज्ञानतस्तु तत्।।

इस सूत्र का प्रतिपाद विषय है कि निश्चय और निर्दोष विवेकज्ञान 'हान' का उपाय है।

(४) जाते हि ज्ञाने प्रकटी भवन्ति, चित्तेन्द्रियाणि पृथगात्मन: खलु।
ज्ञानं च भिन्नं प्रकृतिरात्मनोश्च, ज्ञानं तदेवास्ति विवेक ख्याति:।।

जिस ज्ञान में दृश्य पदार्थों (शरीर, इन्द्रिय चित्त व बुद्धि) से आत्मा भिन्न है यह ज्ञान अर्थात् प्रकृति और पुरुष के स्वरूप का ज्ञान अलग–अलग होता है वह विवेक ख्याति—विवेक ज्ञान कहलाता है।

(५) एतज्ज्ञानं समायाति, वेद शास्त्र परायणात्।
महापुरुष गीर्भिश्च, अनुमान प्रमाणकै:।।

यह ज्ञान वेद शास्त्रों, महापुरुषों के वचनों से एवं अनुमान प्रमाणों द्वारा उदय होता है।

(६) परोक्षज्ञान मेतद्धि, शक्नोति न प्रणाशने।
अनादि काल तो व्याप्तं, क्लेशं जातमविद्यया।।

यह परोक्ष ज्ञान है और अनादिकाल से व्याप्त अविद्याजनित क्लेश को समूल नष्ट नहीं कर सकता है।

(७) यतो वै कारणं तत्र, बीजरूपेण संस्थिता:।
मिथ्याज्ञानात्तु जनिता:, संस्कारास्तु व्युत्थानगा:।।

क्योंकि यहाँ कारण यह है कि मिथ्याज्ञान जन्य व्युत्थान के संस्कार बीजरूप से बने रहते हैं।

(८) वृत्तयस्तामसिका:, राजसाश्चापि कर्हिचित्।
समुद्भवन्ति संस्कारै:, पुरुषे व्युत्थान कालजै:।।

कभी–कभी तामस और राजस वृत्तियाँ उदय होती रहती हैं।

(९) यावदुद्यन्ति ता एव, वृत्तय: समयान्तरे।
विप्लवो वा तु विच्छेद:, कथितस्तन्महर्षिणा।।

समय के अन्तराल में इन्हीं वृत्तियों के उदय को महर्षि पतञ्जलि द्वारा **विप्लव** या **विच्छेद** कहा गया है।

(१०) अतएव हि ख्यातिस्तत्, विप्लवो यत्र विद्यते।
उपायो नास्ति हानस्य, स्पष्टं ब्रूतं महर्षिणा।

अतएव वह विवेकख्याति जिसमें विप्लव हो, हान का उपाय नहीं है, यह महर्षि पतंजलि महाराज द्वारा स्पष्ट रूप से बतलाया गया है।

(११) ज्ञानं विवेकेन यदा समग्रं, निरन्तरं योग क्रियाश्रयेण।
ज्ञानाश्रयेण च तत्वजेन, अनुष्ठादिभिराप्त बलेन वापि।।

(१२) भेदाच्च तस्मात्तु विरोधिनी या, वृत्तिर्भवेदस्मिताकारिणी या।
मध्यस्थता राग द्वेषादि वृत्तिषु, स्याद् वा दृढा वृत्तिरभ्यासविरागयो:।।

(१३) भवेद्वेश्वरस्य प्रणिधानपूर्वकात्,
समाधौ च साक्षात्क्रियते यदा वै।
परोक्षज्ञानादिदमस्ति भिन्नं,
अपरोक्ष ज्ञानमिदमेव कथ्यते।।

(श्लोक सं० ११, १२ व १३ का भावानुवाद)

यह विवेक ज्ञान जब बहुत समय तक निरन्तर क्रिया योग द्वारा, अनुष्ठान बल से, तत्वज्ञान से, अस्मिता विरोधी भेद ज्ञान से, रागद्वेष विरोधी मध्यस्थता से, अभ्यास वैराग्य

अथवा ईश्वर प्रणिधान से पूर्ण अथवा परिपक्व हो जाता है एवं समाधि द्वारा साक्षात्कार कर लिया जाता है तो उसको अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं।

(१४) **अनेना विषयाजनित:, क्लेशो नश्यति वै ध्रुवम्।**
कर्तृत्व भोक्तृत्वभावौ, अहंत्वं हीयते तदा॥

इसी से अविद्या जनित क्लेश का नाश होकर चित्त कर्तृत्व —भोक्तृत्व अभिमान से रहित हो जाया करता है।

(१५) **गुणास्त्रयोऽपि शमिता:, चेत: सत्वम् वाप्नुते।**
सत्वगुणाश्रयान्वर्हि, चेत: चैतन्यमाश्रित:॥

गुणों की वृत्तियों से शून्य होकर चित्त सत्वगुण के प्रकाश से आलोकित चैतन्य का आश्रयी हुआ करता है।

(१६) **चित्तं चेतनतामेति, भिन्नत्वं भासते तथा।**
चित्तेनैव समग्रं तद्, साक्षात्कार: प्रपद्यते॥

चित्त में चेतनता की प्रतीति होती है। चित्त से भिन्न इसका साक्षात्कार होता है।

(१७) **सत्व गुणोदयाच्चापि, विवेकज्ञानमाश्रयात्।**
दग्धबीजांकुरमिव, मिथ्याज्ञानं विनश्यति॥

सत्वगुण के उदय होने से तथा विवेकज्ञान के समाश्रय से जले हुए बीजांकुर के सदृश मिथ्याज्ञान का नाश हो जाया करता है।

(१८) **एतद्विच्छेदनं प्रोक्तं, सूत्रेऽस्मिनविप्लवम्।**
एतदेव हि हानस्य, मोक्षोपायो निगद्यते॥

यही विच्छेद, अविप्लव निर्मल 'हान' का उपाय इस सूत्र द्वारा बतलाया गया है और यही मोक्ष का उपाय है।

(१९) **व्याख्यातं यच्च लिखितं, न ममास्ति गुरो: कृपा।**
समर्प्य तच्चरणयो:, विरमामि नमामि च॥

ऊपर जो कुछ व्याख्या की गई है या लिखा गया है इसमें मेरा कुछ नहीं है। यह श्री सद्गुरुदेव की कृपा है। उन्हीं श्री चरणों को यह समर्पण करते हुए मैं विराम करता हूँ तथा उन चरणारविन्दों में प्रणाम करता हूँ।

।जय जय गुरुदेव।

योगविभूतियाँ क्या और कैसे ?

प्रोफेसर आचार्य चन्द्रहास शर्मा, दिल्ली

कर्मपरायण साधक यदि लम्बे समय तक लगातार श्रद्धापूर्वक योग के यम–नियम–आसन–प्राणायाम–प्रत्याहार–धारणा–ध्यान–समाधि रूप विविध अंगों का अभ्यास करता रहे तो साधना के फलस्वरूप आत्मदर्शन या स्वरूपप्रतिष्ठा से पूर्व इन्द्रियों, शरीर तथा मन बुद्धि आदि की शुद्धि हो जाने पर कायिक, ऐन्द्रिय तथा चित्तज अनेकों विलक्षण शक्तियों का विकास हो जाता है। लोकोत्तर सामर्थ्य को सिद्धियों के नाम से जाना जाता है। ये सिद्धियाँ योग की आगे की मंजिल पर पहुँचने के लिये संकेतक का कार्य करती हैं। जो साधक इनके वशीभूत न होकर श्री सद्गुरु की चरण–शरण ग्रहण कर परम श्रद्धायुक्त हो साधना में तत्पर बना रहता है उसे परमपद–कैवल्य–मोक्ष अर्थात् त्रिविध दुःखों से, जन्म–दुःख जरा–व्याधि से सदा–सदा के लिये छुटकारा मिल जाता है। कैवल्य लाभ योगसाधना का चरमफल है। जैसे बीज के अंकुरित होने पर यदि उसमें खाद, पानी देते हुए, उसकी हानिकारक प्राणियों से रक्षा करते रहा जाये तो एक दिन वह वृक्ष का आकार धारण कर लेता है। उसमें फल लगने से पूर्व नये–नये पत्ते, सुगन्धित पुष्प और उसकी शीतल छाया–वृक्ष की समृद्धि की पहचान बनती है। उसी प्रकार योग साधक के अन्दर भूतजय, इन्द्रिय जय, अतीत–अनागत ज्ञान परकाय प्रवेश, आकाश गमन जैसी अद्भुत सामर्थ्य स्वतः विकसित होती है। श्री सिद्धगुफा सवाई आगरा की सिद्धगुफा सिद्धों द्वारा वन्दनीय ऐसी ही तपस्थली है जहाँ योग विभूतियाँ क्रीड़ा करती रहती हैं। हमारे दादा गुरु परमगुरु योगीश्वर श्री रामलाल जी महाराज गुफा बन्द रहने पर भी अणिमा शक्ति के द्वारा गुफा से निकलकर आकाशगमन सिद्धि द्वारा आकाश मार्ग से नैपाल धाम के निकट सिद्धाश्रम चले गये थे। हमारे सद्गुरुदेव योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज योग विभूतियों से सदा मण्डित रहकर सभी प्राणियों के त्रितापों का हरण करते हुए शक्तिपात द्वारा सामान्य से सामान्य, विरल और गृहस्थ साधकों को सहज ध्यान और समाधि की उपलब्धि देकर उनका आत्मोत्थान करते आ रहे हैं।

प्रायः प्रत्येक योग साधक की यह भावना रहा करती है कि योगाभ्यास से उसमें कुछ चमत्कृत करने वाली विशेष शक्तियों का आविर्भाव हो जाय जिससे वह अपने वैशिष्ट्य को साधारण जन के बीच प्रकट कर सके और सभी से सम्मान प्राप्त कर सके। पर केवल भावना से ऐसा नहीं हो पाता। मुझे स्मरण आता है उस समय का जब कृपा सागर सद्गुरुदेव ने मुझ अकिंचन को अपनी अहेतुकी कृपा शक्ति का पात्र बना तीव्र शाम्भवदीक्षा रूप शक्तिपात द्वारा कृतार्थ किया था। उसके परिणाम स्वरूप नाना प्रकार की कुण्डलिनी भगवती की क्रियायें होती रहती थीं। उन्हीं से मैं अहंकार वश अपने को बहुत कुछ अनुभव करता था। एक दिन श्री सद्गुरुदेव से सहज जिज्ञासावश निवेदन कर बैठा–प्रभु जी पातञ्जल योग दर्शन के विभूतिपाद में निर्देशित विभूतियों को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। श्री सद्गुरुदेव ने रहस्य भरी गम्भीर दृष्टि मेरे ऊपर

डाली फिर मुस्करा कर एक वाक्य कहा— 'लल्ला ! क्या तुम्हारा संयम सिद्ध हो चुका है ?'' अर्थात् धारणा— ध्यान—समाधि तीनों एक लक्ष्य केन्द्रित करने का अभ्यास दृढ़ हो चुका है ? उनके श्रीमुख से यह उत्तर सुनकर फिर कुछ बोलने का साहस नहीं रहा। आत्मावलोकन करने से यह बात स्वतः समझते देर नहीं लगी कि इन विभूतियों को प्राप्त करने के लिए तप और संयम तो कुछ है नहीं और इच्छा इनको प्राप्त करने की है। जो कुछ कृपा सिन्धु ने दे दिया है उसी को सम्भालने की सामर्थ्य नहीं जुटती। छलक—छलक कर इधर—उधर बहने लगता है। ऐसी स्थिति में रहते विभूतियों की प्राप्ति दिवास्वप्न होगा। श्री सद्गुरुदेव की शिक्षा थी— 'समुद्र पीकर भी ओठ सूखे रखो ''अर्थात् बाहरी मानसम्मान के चक्कर में अपनी शक्तियों का प्रदर्शन न करो। शक्ति को आत्मस्थ करते जाओ तब स्वतः अनचाहे ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ उपस्थित हो जायेगी। सन्त प्रवर तुलसी की बात साधकों के मार्ग दर्शन करने के लिये सूत्र वाक्य है— **'गुरु के वचन प्रतीति न जेही। सपनेउ सिद्धि सुलभ नहि तेही।'** सिद्धि का द्वार श्री सद्गुरु देव की शिक्षाओं को हृदयंगम कर निरन्तर साधनाभ्यास करने से खुलता है। जो साधन भजन न कर गुरु होने का प्रपंच रचने में लगे रहते हैं उनमें विभूतियाँ कैसे प्रकट हो सकती हैं ? जैसे बिना दूध देने वाली गाय की सेवा से अमृत तुल्य दुग्ध घृतादि नहीं मिला करता केवल उसका गोबर और मूत्र उपलब्ध होता है। उसी प्रकार विभूति रहित योगी की सेवा से योगसिद्धि नहीं हुआ करती। जब तक यो साधक में शक्ति और भक्ति तथा विवेक और वैराग्य का समन्वय नहीं होता तब तक योग की विभूतियों का दर्शन नहीं हो पाता। शक्तिपात दीक्षा प्राप्त करने मात्रसे आत्म कल्याण नहीं होता। बहुत बड़ी पुण्यों की राशि इकट्ठी होने पर भाग्योदय से किसी जीवात्मा के अन्दर विद्यमान चैतन्यशक्ति के अनादिकाल से आवरण जन्य मल के परिपाक की जितनी—जितनी मात्रा होती है उतनी ही मात्रा में साधक में शक्ति तथा श्रद्धा का उदय हुआ करता है। मलपाक की अवस्थानुसार अनुग्रह और कृपाशक्ति क्रिया करती है। सर्प को दूध पिलाने पर दूध का परिणाम विष हो जाता है। वही दूध यदि गाय के बछड़े को मिलता है तो वह अमृत तुल्य बनकर उसको बल और पुष्टि देता है। जिन साधकों का मन तथा इन्द्रियाँ बहिर्मुखी और भेदज्ञान वाली पशुस्वभाव की हैं उनको सद्गुरु की अनुग्रहात्मिक शक्ति प्राप्त भी हो जाय तोभी स्वरूप प्रतिष्ठा नहीं हो पाती। वह शक्ति सुख—दुःखात्मक कर्म उत्पन्न करती रहती है। जिससे साधक के स्वरूप पर परदा पड़ा रहता है और वह अहंकार के दायरे में पड़ा हुआ प्रपन्च का विस्तार करता रहता है। जब तक साधक में सात्विक श्रद्धा तथा निरहंकार की स्थिति नहीं आती तब तक ईश्वरीय शक्ति सुख दुःख मूलक कर्म ही बनी रहती है क्रिया शक्ति नहीं बनती। जब सद्गुरु की शाम्भवी शक्ति शिव शक्ति के संगमन मार्ग में आरूढ़ होकर ज्ञानमयी बनती तब तक वह क्रियाशक्ति का रूप धारण कर सिद्धिदात्री नहीं बनती। जप—तप, ध्यान, धारणा, समाधि आदि इसीलिए 'कर्म' नहीं कहे जाते बल्कि क्रियायोग के साधन सोपान हैं। कर्म में कर्तापन से फल की परतंत्रता है, किन्तु क्रिया में अविच्छिन्न स्फूर्ति, अक्रम भोग तथा मोक्ष की स्वतन्त्रता है। सिद्धावस्था में शक्तिसर्व तंत्र स्वतंत्र एवं पूर्ण हुआ करती है। इसलिए सिद्धों का शक्तिपात पूर्ण कृपा करने वाला होता है अपूर्ण कृपा का शक्तिपात साधक को अपूर्ण ही रखता है। अपूर्ण शक्तिपात ब्रह्मादि देवगण भी कर सकते

हैं। जिनके फलस्वरूप साधक ब्रह्मा के पद तक पहुँचकर भोग और अधिकार तो प्राप्त कर सकता है, स्वरूप प्रतिष्ठा अर्थात् मोक्ष नहीं। मोक्ष तो परिपूर्ण सिद्ध ही सद्गुरुरूप में शक्तिपात कर प्रदान कर सकते हैं।

भगवान वेदव्यास तथा योगेश्वर श्री कृष्ण ने योगसिद्धि के लिये तप को अपरिहार्य बताया है। **'नातपस्विनः योगः सिध्यति।'** तप के बिना साधक के कर्ममल, संस्कारमल और आणव मल दूर नहीं होते। जिनके आणवमल तप द्वारा दूर हो चुकते हैं उन पर शक्तिपात उसी प्रकार तीव्र संवेग से क्रियाशील बन जाता है जैसे सूखी माचिस में तीली रगड़ने मात्र से अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। जैसे सूर्य का प्रकाश मिट्टी के ढेले, पत्थर, लोहा शीशा और सूर्य कान्तमणि पर समान रूप से पड़ता है किन्तु उसकी परिणीत प्रत्येक पदार्थ में गुणधर्म और अधिकार भेद से अलग—अलग हुआ करती है। मिट्टी शुष्क होने लगती है, पत्थर गर्म हो जाता है, शीशा चमकने लगता है और सूर्य कान्तमणि से अग्नि प्रकट होने लगती है। इसी प्रकार अधिकारी भेद से शक्तिपात के परिणाम में अन्तर आया करता है। इस अन्तर को हमारे योगाचार्यों ने—'समयी', 'पुत्रक', 'साधक', 'आचार्य', 'गुरु', 'सद्गुरु', 'परमगुरु', आदि श्रेणियों में बाँटा है। जो जीव तप रहित भोग परायण जीवन यापन करता है वह शक्तिपात की मन्दगति का अधिकारी होता है। वह शक्तिपात की मात्रा मन्द होने से माया के राज्य में पड़ा हुआ बाह्य पूजन और यज्ञ करता रहता है। ऐसे प्राणी का शास्त्रीय नाम **'समयी'** होता है। अपेक्षाकृत तीव्रतर शक्तिपात का अधिकारी प्राणी जप और ध्यान परायण **'पुत्रक'** कहलाता है। जिनमें वैराग्य की स्थिति दृढ़ होती है ऐसे तीव्रतर शक्तिपात के अधिकारी **'साधक'** कहलाते हैं। ऐसे प्राणी साधना के बल से शीघ्र या विलम्ब से अपना लक्ष्य प्राप्त कर पाते हैं। जो जीवों पर अनुग्रह करने की सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए सिद्ध पुरुषों का तीव्रतम शक्तिपात प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं वे शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार **'आचार्य'** कहलाते हैं। जिनमें ईश्वर की पाँच क्रियायें, सृष्टि, पालन, संहार, अनुग्रह और निग्रह समाधि सिद्धि के बल से प्रसिद्धि होती हैं उन्हें शास्त्रीय दृष्टि से **'गुरु'** कहा जाता है। जो मोक्ष के द्वार का पथिक बनाने की सामर्थ्य रखते हैं वे **सद्गुरु** तथा जो प्रारब्धक्षय के बिना ही इच्छामात्र से साधक तीव्रतम शक्तिपात कर देह के बन्धक से छुड़ाकर मोक्ष प्रदान करने की सामर्थ्य रखते हैं ऐसे **सिद्धेश्वर परमगुरु** कहलाते हैं आचार्य, गुरु, सद्गुरु और परमगुरु में विभूतियों का प्रादुर्भाव और तारतम्य देखा जाता है। आजकल योग के जिज्ञासु तक बन नहीं पाते और अपने को आचार्य, गुरु और श्री श्री १००८ योगिराज लिखकर स्वयंभू सिद्ध बनने का प्रपंच करते हैं ऐसे लोग योग विभूतियों के अधिकारी नहीं है।

श्रद्धायुक्त हृदय में स्वसंवेद्य प्रातिभज्ञान उपस्थित होता है। जीव का शुद्ध रूप, ईश्वर और चैतन्यशक्ति—ये तीनों श्री गुरुकृपा से तात्विक रूप से सिद्ध हो जाते हैं तो यही प्रातिभज्ञान के रूप में साधक में उपस्थित होते हैं। गुरु शिष्य की योग्यता देखकर उसके अधिकार के अनुसार उस पर शक्तिपात कृपा करते हैं जिससे परम बुद्धिमान साधक ही शिव शक्तिमय सद्गुरु के कर स्पर्श और वाणी द्वारा अपने अन्दर की शक्ति को प्रबुद्ध होता हुआ अनुभव कर पाता है। जैसे भस्म में छिपी अग्नि फूंकने से प्रज्वलित हो उठती है उसी प्रकार गुरुपदिष्ट क्रिया शक्ति से प्रातिभज्ञान उपस्थित होता है। प्रातिभज्ञान आत्मबोधजन्य **'विवेकख्याति'** बन जाता है। यहाँ

भ्रम और संशय नाम की कोई चीज नहीं रहती। सम्यक् ज्ञान अथवा महाज्ञान की स्थिति में साधक महाप्रकाश पथ में पूर्णता की ओर गमन करने लगता है। विवेकज्ञान का उदय होने पर इन्द्रियों, मन, बुद्धि चित्त, अहंकार–सभी में अपरिमित शक्ति का विकास होता है। जैसे दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरस्थ वस्तु का ग्रहण, परिचित ज्ञान आदि की शक्ति। उस समय देश, काल, आकारगत महानता अथवा सूक्ष्मता की सीमायें रहने पर भी वस्तु के तत्व को यथार्थरूप से जानने में कोई रुकावट नहीं आती। योग विद्या के विभिन्न शास्त्रों में जिन विभूतियों का वर्णन किया गया है वे सभी 'विवेक ख्याति' उपलब्ध योगी को प्राप्त होती हैं। विवेक ज्ञान प्राप्त योगी का अधिकार तंत्र, मंत्र, षट्चक्र भेदन, स्वर साधन, परकाया प्रवेश आदि पर समान रूप से हो जाता है। विवेक की पराकाष्ठा होने पर इन विभूतियों से भी वैराग्य हो जाता है। सर्वत्र एक परब्रह्म की सत्ता के अतिरिक्त कोई दूसरा तत्त्व भासित ही नहीं होता। उस स्थिति में विभूतियाँ बच्चों का सा खेल या स्वप्न की भाँति प्रतीत होती हैं।

विवेक ज्ञान में आरूढ़ व्यक्ति स्वयं मुक्त दूसरों को भी मुक्त करने की सामर्थ्य प्राप्त करता है। जैसे श्री तोतापुरी परमहंस ने स्वामी रामकृष्ण परमहंस को निर्विकल्पक ज्ञान दीक्षा देकर जीवन्मुक्त अवस्था प्रदान कर दी थी। आगम का सिद्धान्त है कि जिस समय कोई विवेक ज्ञान सिद्ध गुरु दीक्षा देकर निर्विकल्पक बोध प्रकाशित कर देता है। उसी समय साधक मुक्त हो जाता है। फिर उसका व्यवहार यंत्रमात्र रह जाता है।

'यस्मिन् काले तु गुरुणा निर्विकल्पं प्रकाशितम्।
तदैव किल मुक्तोऽसौ यंत्रं तिष्ठति केवलम्। –रत्नमाला आगम

पातंजल योगदर्शन में विवेकज्ञान के विषय में कहा गया है कि–**तारकं सर्वविषयं–सर्वथा विषयक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्।** अर्थात् विवेकजज्ञान सभी विषयों का, विषय की पूर्वापर सभी अवस्थाओं का ज्ञापक और क्रमरहित अर्थात् एक साथ, बिना शास्त्र या गुरु के उपदेश की अपेक्षा वाला, संसार सागर से तारने वाला है। इसके उपलब्ध होने पर कुछ भी अज्ञात नहीं रहता। इसी से सिद्धियाँ मिलती हैं जो मोक्ष में बाधक हैं किन्तु यही ज्ञान जब सिद्धियों की परवाह किये बिना पुरुषोत्तम का अनुभव करने वाला बनता है तो यह मोक्षदायी सिद्ध होता है। वस्तुतः सिद्धियों से चित्त में यह विश्वास उत्पन्न होता है कि देह के रहते संयम सिद्धि से जब सिद्धियाँ प्राप्त करना सम्भव है तो देहपात के बाद इसी ज्ञान के द्वारा मुक्ति भी अवश्य सम्भव है। कुछ साधकों में प्राणायाम ध्यान आदि की गहन साधना से यह ज्ञान प्रकट होता है। कुछ वैराग्य सम्पत्ति युक्त साधकों में यह ज्ञानजन्य से ही प्रकट होने लगता है। महोपनिषद् के द्वितीय अध्याय में उल्लेख है बीतराग परमहंस शिरोमणि श्री शुकदेव जी महाराज में यह महाज्ञान जन्म से ही बिना गुरु के उपदेश ही उदित हो गया था। जिसके फलस्वरूप उनकी भोग वासनाओं में पूर्णतः निवृत्ति हो गयी थी। परन्तु गुरू के अभाव में वह ज्ञान दृढ़ न होने के कारण उनके मन में शान्ति नहीं हुई क्योंकि उन्हें अपने ज्ञान में पूर्ण विश्वास नहीं हो पा रहा था। अतः उनके पिता श्री व्यास देव जी ने विदेहराज जनक के पास उन्हें भेजा था। देहधारण करना ही अन्य जन्मों के कर्मों के परिणाम का प्रमाण है। अतः देह में आबद्ध ज्ञानीजन भी कर्मप्रवाह से

बाधित होकर संशय ग्रस्त हो जाते है। गुरुदेव की कृपा होने पर अनुभूत ज्ञान निश्चयात्मक हो पाता है।

चित्त जब तक कर्मफल की वासना से अनुरक्त है तब तक उसमें सतोगुण का विकास नहीं होता। सत्वगुण की उच्चावस्था प्राप्त योगी पूर्ण श्रद्धा युक्त बन पाता है। श्रद्धा का अभिप्राय है सतोगुण की धारणा सामर्थ्य। जितनी मात्रा में सतोगुण धारण करने की शक्ति विकसित होती जाती है उतना ही योगी श्रद्धारूढ़ होकर योग विभूतियों का वरण करता जाता है। धारणा ध्यान समाधि—'त्रयमेकत्र संयमः—' यह तीनों की एकलक्ष्यीभूत क्रिया बिना सतोगुण की वृद्धि के नहीं होती। अतः भगवान सदाशिव ने शिवसंहिता में विभूतियों का आधार श्रद्धा की उच्चावस्था को माना है—

''श्रद्धयात्मवतां पुंसां सिद्धिर्भवति नान्यथा।
अन्येषां च न सिद्धिःस्यात्तस्माद्यत्नेन साधयेत्॥ शिवसंहित ३/१६

न भवेत् संगयुक्तानां तथाऽविश्वासिनामपि। गुरुपूजा विहीनानां तथा च बहुसंगिनाम्।
मिथ्यावाद रतानां तथा च निष्ठुरभाषिणाम्। गुरु संतोषविहीनानां न सिद्धिः स्यात् कदाचन॥

अर्थात् जिन साधकों में श्रद्धा की मात्रा कम है उन्हें सिद्धि नहीं होती। सिद्धि श्रद्धा सम्पन्न आत्म तेज युक्त साधकों को ही होती है। अतः प्रयत्न पूर्वक सतोगुण बढ़ाने वाले प्राणायाम, मंत्रजप, ध्यान और गुरुपूजन आदि साधनों को करता रहे। जिन्हें गुरूपदिष्ट साधन पर विश्वास नहीं है और गुरुपूजन की भावना है तथा जो रातदिन कुसंग के झमेले में पड़े रहते है, जो मिथ्याभाष्य करने, कठोर वचन बोलने में प्रवीण हैं तथा जो अपने सद्गुणों से और सेवा से गुरुदेव को प्रसन्न नहीं करते, उन्हें कदापि सिद्धियाँ उपलब्ध नहीं होती। योग सिद्धि के लक्षणों का निर्देश करते हुए भगवान सदाशिव कहते है—

योगसिद्धि का प्रथम लक्षण है—ऐसा विश्वास होना कि गुरुपदिष्ट साधनों के अभ्यास से मुझे अवश्य सिद्धि मिलेगी। दूसरा लक्षण गुरु और शास्त्र में अविचल श्रद्धा युक्त हृदय। तीसरा लक्षण है सोते, बैठते, जागते, चलते, फिरते, निरन्तर श्री गुरुदेव के चरण कमलों का चिन्तन मानसिक पूजन, ध्यान चलता रहे। चौथा लक्षण है प्राणिमात्र में समताभाव तथा पाँचवा लक्षण इन्द्रियों का संयम। छठा लक्षण है—परिमित लघु, शुद्ध सात्विक भोजन। योगसिद्धि के यही छः लक्षण हैं, सातवां कोई नहीं है। अतः सिद्धियों के इच्छुक साधक को अभीष्ट है कि श्रीगुरुदेव से योग का उपदेश प्राप्त कर दृढ़ निश्चय के साथ आसन दृढ़, आहारदृढ़ तथा निद्रादृढ़ कर प्राणायाम के द्वारा मलशोधन कर ले। भगवान सदाशिव का वचन है कि केवल प्राणायाम की साधना परिपक्व करने से ही साधक अणिमा, महिमा, गरिमा आदि अष्ट सिद्धियों का ऐश्वर्य लाभ कर सकता है। इतना ही नहीं वह पाप पुण्य के कर्मफल स्वरूप जन्म—आयु—भोग का भी अतिक्रमण कर स्वतन्त्र अजर-अमर होकर त्रिलोक में विचरण कर सकता है। जब सत्वगुण का प्रबल उद्रेक होता है तो प्रज्ञा का उन्मेष होने से अविद्या की निवृत्ति होती है। साधक में स्वाभाविक ऐश्वर्य अभिव्यक्त होता है। ईश्वर में समग्र ऐश्वर्य, समग्र ज्ञान, समग्र वैराग्य, समग्रबल समग्र यश तथा समग्र सौन्दर्य का भण्डार है। ईश्वर में दैहिक, ऐन्द्रियिक तथा मानसिक तीनों प्रकार के अष्टविद्य ऐश्वर्य नित्य प्राप्त है। योगी संयम का अवलम्बन लेकर ध्यान बल से

भूतजयी बन जाने पर उन्हीं अष्ट विध ऐश्वर्यों को प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है। यथा पंच महाभूतों की स्वरूपावस्था का साक्षात्कार करने की सामर्थ्य प्राप्त करने से 'प्राकाम्य' नामक संकल्पसिद्धि प्राप्त होती है। पंचभूतों की गन्धतन्मात्रा पर संयम करने से उनकी सूक्ष्म अवस्था प्रत्यक्षी भूत होने से वशित्व सिद्धि प्राप्त होती है। पंचभूतों की अन्वय अवस्था अर्थात् उससे होने वाले कार्यों में संयम करने से ईशत्व याने सभी पर हुकूमत करने की क्षमता तथा अर्थवत्त्व अवस्था अर्थात् भोग और अपवर्ग दोनों अवस्थाओं का साक्षात्कार करने पर यत्कामावसायित्व याने सभी प्रकार की मनोरथ सिद्धि सत्य संकल्प सिद्धि लाभ होता है। इन सब को प्राप्त कर योगी भगवान के ही तुल्य हो जाता है। भगवान में ऐश्वर्य होते हैं, जिन्हें भग कहा जाता है। उसमें आत्मतत्त्व की पूर्ण अभिव्यक्ति से लेकर ऐश्वर्यों की अभिव्यक्ति भी होती है। सिद्ध और ईश्वर समान धर्मा होने से सिद्ध भी ईश्वर कोटि में गिने जाते हैं। षड्विध ऐश्वर्यों का शास्त्रकारों ने निर्देशन किया है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चापि षण्णां भग इतीर्णा।।

मात्र अन्तर इतना है कि ईश्वर का ऐश्वर्य अप्राकृत एवं विशुद्ध सत्व से स्वतः प्रस्फुरित रहता है। जीव निम्नलिखित उपायों द्वारा अपने मलिन प्राकृत सत्व को शुद्ध कर अपने ऐश्वर्य को प्रकट कर लेता है। योगीश्वर गोरखनाथ ने जीव के अन्दर विभूतियों के प्रकट करने के साथ सोपानों को आधार माना है—

शोधनं दृढ़ता चैव स्थैर्यं धैर्यञ्च लाघवम्।
प्रत्यक्षञ्च निर्लिप्तत्वं दैहिकं सप्त साधनम्।। गो० सं० ४/६
षट् कर्मणा शोधनश्च आसनेन भवेद् दृढम्।।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता।।
प्राणायामात् लाघवत्वश्च ध्यानात् प्रत्यक्षमात्मनि।
समाधिना निर्लिप्तत्वं मुक्तिरेव न संशयः।।

अर्थात् धेति, धौति, नौलि, वस्ती, त्राटक,कपालभाति— इन छः कर्मों द्वारा नाड़ीगत मलों का शोधन, पद्मासन, सिद्धासन वज्रासनादि आसनों द्वारा दृढ़ता खेचरी, शाम्भवी, विपरीतिकरनी, योनि मुद्रा आदि द्वारा स्थिरता, प्रत्याहार द्वारा धैर्य तथा प्राणायाम द्वारा लघुत्व, ध्यान द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन और समाधि द्वारा निर्लिप्तता साधन करने से मोक्ष की उपलब्धि होती है। यदि साधक नाड़ी शुद्धि कर प्राणायाम द्वारा घण्टे तक वायुधारण करने में समर्थ हो जाय तो समस्त अभिलषित पदार्थ प्राप्त कर पूर्वजन्म और इस जन्म में किये गये समस्त कर्मजाल को विनष्ट कर सकता है। जैसा कि शिव संहिता में निर्देश मिलता है—

'वाक् सिद्धिः कामचारी दूरदृष्टिस्त थैव च।
दूरश्रुतिः सूक्ष्म दृष्टिः परकाय प्रवेशनम्।।
विण्मूत्र लेपने स्वर्णमदृश्यकरणं तथा।
भवन्त्येतानि सर्वाणि खेचरत्वश्च'योगिनाम।। शिवसंहिता। २/६४—६५

अर्थात् वाक् सिद्धि, स्वेच्छा से सर्वत्र गति, दूरदृष्टि, दूर श्रवण, अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु को देखने की सामर्थ्य, परकाया प्रवेश क्षमता, आकाश गमन तथा मल–मूत्र के लेप से धातुओं से स्वर्ण निर्माण की योग्यता, अन्तर्धान की क्षमता आदि अलौकिक सामर्थ्य योगी को प्राप्त हो जाती है। पवन विजय स्वरोदय में कहा गया है कि योगीगण ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न नहीं करते। आत्मदर्शन के मार्ग में चलते हुए वे उन्हें स्वतः सुलभ हो जाते हैं। स्वर शास्त्र के अनुसार जो श्वास बाहर निकलने के क्रम को बारह अंगुल की स्वाभाविक गति को घटाकर आठ अंगुल फिर चार अंगुल तक कर लेता है वह उक्त अष्टैश्वर्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। कहा गया है–

''अष्टमे सिद्धयश्चाष्टौ नवमे निधयो नव।।

प्राण आत्मा की प्रमुख शक्ति है। इस प्राणशक्ति का अनुभव प्राणायाम द्वारा होता है। प्राण के साथ–साथ मन भी शक्ति सम्पन्न होकर नानात्व में आत्मतत्व का दर्शन करने की योग्यता प्राप्त करा देता है। योगेश्वर श्री कृष्ण ने योग–विभूति या योगैश्वर्य प्राप्त योगी को अटूट (अविकम्प) योगयुक्त कहा है। श्रीमद्भगवद् गीता के दशम अध्याय को विभूति योग कहा जाता है। विभूति योग में पञ्चतत्वों से लेकर आत्मतत्व तक पूर्ण अधिकार प्राप्त करना योग साधना का चरम फल है। कहा गया है कि–

'एतां विभूतिं योगं च मम योवेत्ति तत्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।। गीता १०/७

इस श्लोक पर योगी श्यामाचरण लाहड़ी महाशय की आध्यात्मिक व्याख्या दृष्टव्य है। वे लिखते हैं– 'श्रवण और अध्ययन आदि से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उससे स्वरूपानुभाव नहीं होता। पञ्चतत्व भेदकर जब आज्ञाचक्र में स्थिति होती है तब प्रकृत इच्छा रहित और संशय शून्य अवस्था आती है और तभी मन अन्य विषय में आसक्ति रहित होकर केवल मात्र आत्मा में योगयुक्त होकर रह सकता है। साधन में दृढ़ता अवलम्बन कर जिन्होंने खेचरी सिद्ध की है, वे इसके बाद एक अवस्था प्राप्त करते हैं जिसे **शाम्भवी** कहते हैं। उस अवस्था में योगी को असाधारण सामर्थ्य और योगैश्वर्य प्राप्त होता है। यह विभूति ही भगवान के अतुल महत्व और अपूर्व सौन्दर्य को प्रकाशित कर साधक को साधन पथ में अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करती है। साधक साधन के द्वारा जितना ही विज्ञान मय क्षेत्र में प्रवेश करता जाता है उतना ही अतिसूक्ष्म और अननुभूत विषयों को प्रत्यक्ष करता है। उस समय साधक के मन में कोई संशय नहीं रहता। जो साधक आज्ञा चक्र में इस प्रकार प्रतिष्ठित होता है उसको फिर कुछ पाने की इच्छा नहीं होती। इस प्रकार संकल्प रहित साधक सदा ब्रह्म में लगे रहते हैं। जब तक प्राण स्वरूपिणी कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार में निद्रित अवस्था में रहती है तब तक योगैश्वर्य का प्राकट्य नहीं होता। वैसे तो जगत् में जो कुछ वस्तु है, वह भगवान की विभूति है। तथापि योगियों के साधन पथ में ही योग विभूतियों का विकास होता है जिन्हें योगी साधक योग विघ्न मानते हैं। जिनका वैराग्य पुष्ट नहीं हो पाया, उन साधकों में अल्प समय के लिये योग विभूतियाँ प्रकट होकर तिरोहित हो जाती हैं। योगी में इन विभूतियों का अहंकार बलिष्ठ होकर विघ्न का कारण बनता है। किन्तु वैराग्य सम्पन्न

साधक के अन्दर उदित योग विभूतियाँ योग साधना की उन्नति की सूचक होती है।

कुछ विभूतियाँ जन्म, औषधि और मंत्र से भी उदित होती है। किन्तु वे अल्प काल तक रहने वाली हुआ करती हैं अतः उन से कैवल्य प्राप्ति नहीं होती। इसीलिए पार्थिव ऐश्वर्य के प्रति योगी में आकर्षण नहीं होता। योगी वही ऐश्वर्य चाहता है जिससे परम तृप्तिरूप कैवल्य लाभ हो सके। विभूति या योगैश्वर्य कैवल्य प्राप्ति में सोपान रूप है। भगवत्कृपा से मलिन सत्व प्रधान जीव के रज और तम साधना द्वारा शुद्ध हो जाते हैं तो उसमें विशुद्ध सत्व का उन्मेष होने पर ऐश्वर्य का उदय होता है। ऐसी स्थिति में योगैश्वर्य कैवल्य प्राप्ति में विघ्न स्वरूप नहीं है। जीव जब अपने शुद्ध परमात्मभाव को प्राप्त कर लेता है तब उसमें स्वतः अलौकिक विभूतियों का आविर्भाव होने लगता है। आदि शंकराचार्य के शिष्य सुरेश्वर कहते हैः–

ऐश्वर्यमीश्वरत्वं हि तस्य नास्ति पृथक् स्थितिः।
पुरुषे धावमानेऽपि छाया तमनुधावति॥

अर्थात् ईश्वर का स्वभाव ही ऐश्वर्य है। यह आत्मा का आगन्तुक धर्म नहीं है। अविद्या के दूर होने पर जीव में परमात्म स्वभाव का विकास होने पर ऐश्वर्य का स्वतः ही विकास उसी प्रकार होता है जैसे दौड़ने वाले के पीछे उसकी छाया दौड़ती है। विश्व के सभी धर्म ग्रन्थों में और योगियों में यत्र तत्र सर्वत्र योग विभूतियों का वर्णन पढ़ने देखने और सुनने में आता है। श्री सिद्धगुफा सबांई पर श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने पूरे खेत की बेलों को लौकियों से भरपूर कर दिया था। गांव के लोगों को कुएँ में श्री गंगाजी के दर्शन करा दिये थे। एक ही समय गुफा पर एक शरीर से रहते हुए गंगा स्नान के पर्व पर गंगा के विभिन्न स्थानों पर ग्रामवासियों के साथ स्नान किया था। मृत प्राणी को जीवन दान देना, असाध्य रोगों को बिना औषधि अपनी करूणा दृष्टि से ठीक कर देना आदि अनेकों विभूतियाँ इस सिद्ध दरबार में बहुत से भाई–बहिनों ने स्वयं देखी है। कबीरदास, नानक, पलटू साहब, तुलसीदास, मीरा, चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस, तैलंग स्वामी, रामदास, साईं बाबा आदि अनेकों योगियों की विभूतियाँ भारत में प्रसिद्ध हैं। विदेशों में ईसा मसीह, हजरत मूसा, रविया, मुहम्मद साहब, आदि महापुरूषों के जीवन में नाना प्रकार की योगविभूतियों का दिग्दर्शन होता है। मैं सन् १९६८ में अजमेर नौकरी के साक्षात्कार के लिए डी. ए. बी. कालेज गया था। वहाँ से तीर्थराज पुष्कर में किसी संत के दर्शन की लालसा से गया। वहाँ एक विचित्र संत थे, जो पूर्ण दिगम्बर अवस्था में विक्षिप्त सी स्थिति में एक स्थान पर बैठे रहते थे। चारों ओर अस्तव्यस्त सामान पड़ा था धूनी जल रही थी। कई स्लेटों पर विभिन्न भाषाओं पर वे कुछ लिखते रहते थे और मिटाते रहते। लोगों ने बताया कि इनके पास जाना खतरे से खाली नहीं है। कभी–कभी जलती लकड़ी उठाकर मार भी देते हैं और गालियाँ देते हैं। जो डट गया उसका काम बन जाता है। वे गणेश जी के उपासक थे। जिज्ञासा वश मैं वहाँ गया उन्होंने स्लेट बत्ती उठाकर मेरा नाम लिख दिया और वहाँ आने का प्रयोजन लिखकर गालियों की बौछार शुरु कर दी। 'साला यहाँ मेरे पास–लेने आया है। संसार की सारी दौलत तुझे ही मिल जाय। किसी और को कुछ न मिले। जहाँ से सब कुछ मिल सकता है वे परिपूर्ण गुरू मिले हुए हैं, फिर भी इधर–उधर अपनीऐसी तैसी कराके भागा फिरता है। ये सब

कहकर उसने जलती हुई लकड़ी उठाकर कहा– 'भाग यहाँ से। मेरे पास तेरे लाइक कुछ नहीं है।'' पर चित्तज्ञान, दूरदृष्टि आदि की अनेकों सिद्धियाँ बाद में मैंने उन महापुरुष में कई बार देखीं। अजमेर के प्रवास काल में उसी प्रकार के आत्मदृष्टि सम्पन्न एक योगी को जिन्हें दाता महाराज कहा जाता था, देखने का सौभाग्य मिला उनका गहन सत्संग भी मिला। विज्ञान की नवीनतम खोजों से लेकर संसार की दुर्लभ वस्तुओं तथा सभी शास्त्रों का ज्ञान उनकी जिह्वा पर सदा विद्यमान रहता था। संसारी दृष्टि से यद्यपि उन्होंने विशेष शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। उनके साथ बहुत प्रसंग हुए। असाध्य रोगों की निवृत्ति उनकी कृपा दृष्टि से ही दूर होती देखी। उन सब का उल्लेख करने पर एक पुस्तक की रचना हो जायगी।

योगियों का यह अलौकिक विज्ञान वर्तमान समय के भौतिक विज्ञानियों या शरीर विज्ञानियों के ज्ञान द्वारा ग्राह्य नहीं हो सकता। कारण, केवल ग्रन्थों के अध्ययन से जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है, वह तो शुष्कज्ञान है। उससे हृदय का प्रेम रस सूख जाता है। जिस ज्ञान से शुद्धभक्ति का आविर्भाव होकर आत्म तत्व का स्फुरण होता है उसी से योग विभूतियों की अभिव्यक्ति हुआ करती है। इसके लिए प्राणायाम, धारणा ध्यान–समाधि रूपी पुरुषार्थ द्वारा चित्त शुद्धि आवश्यक है। श्री सद्गुरू के आदेश को शिरोधार्य कर जो श्रद्धा, आदर, निष्ठा और विश्वास के साथ योगसाधना में डट जाता है, वह योग विज्ञान की शक्तियों का खजाना बन जाता है। दीर्घ काल तक निरन्तर योगाभ्यास करने के परिणाम स्वरूप चित्त शुद्धि और आत्मज्ञान का आविर्भाव हो जाता है। जिससे हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है, संशय निवृत्ति हो जाती है और संचित कर्मों का क्षय हो जाता है। उस अवस्था में अविद्या की आंशिक निवृत्ति होने से जो आत्मशक्ति स्फूर्त होती है, वही योग विभूति कहलाती है।

वाराणसी में विशुद्धानन्द कानन में आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के समकाल में परमहंस श्री विशुद्धानन्द जी महाराज योग की विभूतियों की वैज्ञानिक विधि से व्याख्या करते हुए साधकों को उनका अनुभव कराया करते थे। एक बार महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज को पुराण वर्णित श्री विष्णुभगवान के नाभि कमल से ब्रह्मा जी की उत्पत्ति के रहस्य को समझाते हुए उन्होंने कहा कि यह अक्षरशः सत्य है। जब कुण्डीलनी शक्ति का विकास होता है, तब योगी के अन्तराकाश में परमादित्यस्वरूप ज्योतिर्मय तेजः पुन्ज का उदय होता है। फिर सूर्योदय के समय में जैसे कमल खिलता है वैसे ही नाभि कमल स्वतः प्रस्फुटित हुआ करता है। जो नाभिधौति आदि क्रियाओं में सिद्धहस्त नहीं है, उनमें कमल का विकास सम्भव नहीं। साधारण जीवों की नाभि में ग्रन्थि लगी है। उसके रहते सूर्य रश्मियों की ऊर्ध्वगति सम्भव नहीं है। ऐसा कहते–कहते श्री गन्धबाबा (परमहंस विशुद्धानन्द) नें नाभि प्रदेश को दोनों हाथों से इधर से उधर हिलाया डुलाया। थोड़ी ही देर में नाभिप्रदेश में गहरा गड्ढा हो गया। उस गड्ढे में से कमल नाल का विकास होकर उस पर लावण्य युक्त दिव्य कमल दिखायी पड़ने लगा। उसकी दिव्य गन्ध से दूर–दूर तक वातावरण सुरभित हो उठा। कुछ क्षण बाद नाभि के पुनः हिलाते ही कमल नाल संकुचित होकर भीतर प्रवेश कर अदृश्य हो गया। श्री कविराज जी ने साधु दर्शन प्रसंगों में कई योगियों की प्रत्यक्ष देखी हुई योग विभूतियों का वर्णन किया है। उन्होंने अनुभव किया कि कठिन

रोग के समय गंधबाबा ने अचानक स्थूल या सूक्ष्म शरीर से प्रकट होकर उपदेश, औषधि या कृपादृष्टि मात्र से रोगी को रोग मुक्त किया था।

योग विभूतियों के प्रसंगों की प्रत्येग युग में भरमार रही है। इस घोर कलिकाल में भी ऐसे अनेक ज्ञात और अज्ञात अवस्था में योगी विद्यमान हैं जिनमें अपनी अपनी भूमिका के अनुसार योग विभूतियाँ दिखायी पड़ती हैं। योगों के विभिन सम्प्रदायों में इन योग विभूतियों को सिद्धियों या योगी की शक्तियों के रूप में स्वीकार किया गया है। महर्षि पतंजलि के विभूतिपाद में विभिन्न प्रकार की योग विभूतियों के स्वरूप एवं सिद्धान्तों का सूत्ररूप में वर्णन किया है। जिसकी व्याख्या महर्षि वेद व्यास, विज्ञान भिक्षु, भोज आदि परवर्ती आचार्यों ने की है। आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न योग केन्द्रों में इन सिद्धान्तों की अभ्यास प्रक्रिया विकसित कर आधुनिक वैज्ञानिक रीति से योगाभ्यासियों के प्राप्त परिणामों से उन सिद्धान्तों को परिपुष्ट एवं सत्यापित किया जाय। अन्यथा तथाकथित नास्तिक बुद्धिवादी इन सब बातों को कल्पना अथवा मनोरंजन के लिए की गयी अतिश्योक्ति समझेंगें। योगारूढ़ साधकों को इन सब विभूतियों को जानकर योग साधना में आगे बढ़ने को प्रेरणा अवश्य प्राप्त होगी। यदि उन सिद्धान्तों की प्रायोगिक प्रक्रिया को विधिवत् विकसित किया जा सके तो भौतिक विज्ञान की उपलब्धियों के चकाचौंध में विक्षिप्त आज के मानव को सत्य जीवन का मधुरिम आनन्द और अमृत मिल सकेगा। यद्यपि पुराणों, तंत्र ग्रन्थों तथा योग शास्त्रों में ऋषियों ने संक्षेप से उन उपायों और प्रविधियों का वर्णन किया है जिनका अभ्यास करने से निःसन्देह अभीष्ट परिणाम सामने अवश्य आयेंगे। आजकल इन्द्रियाँ इतनी बहिर्मुखी हो रहीं हैं कि इस प्रकार के साहित्य के स्वाध्याय और सत्संग की प्रवृत्ति ही नहीं हो पाती। जब तक चित्त बहिर्मुखी रहता है, उसमें वृत्तियाँ जन्म लेती रहती हैं। अन्तर्मुखी चित्त में वे ही वृत्तियाँ सिमट कर शक्ति का रूप धारण कर लेती हैं। यथार्थ को प्राप्त करने की अपेक्षा आज का साधक सोटा और लंगोटा, जटा–जूट, माला–झोला, लाल–पीले, गेरुए या काले वेषमात्र के चक्कर में अधिक पड़ा रहता है। थोड़ा कुछ हुआ नहीं कि उसको गुरू बनकर चेला चेली बनाने का बुखार चढ़ने लगता है। ऐसी स्थिति में योगविभूतियों का स्वानुभव कहाँ से होगा ? श्री मद्भागवत में महर्षि वेदव्यास जी महाराज ने सूत्र रूप में विभूतियों तक पहुंचने का मार्ग इस प्रकार बताया है–

'जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः।
मयि धारमतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः॥ ११/१५/१

सर्वप्रथम साधक अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करे तत्पश्चात् युक्त होकर अपने प्राणों को निरुद्ध करे। घटावस्था में कुम्भक की स्थिति जितश्वास अवस्था है। अपने से बाहर की किसी वस्तु से जुड़ना संयोग या संयुक्त होना कहलाता है।अपने आत्मचेतन से स्वस्वामीभाव संबंध से जुड़ना, युक्त होना या योगी होना कहलाता है। समाहित चित्त होने के बाद सभी स्थूल और सूक्ष्म भूतों, इन्द्रियों, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा प्रकृति के स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वयत्व आदि अवस्थाओं में धारणा–ध्यान–समाधि के द्वारा सभी सिद्धियों का स्वतः आविर्भाव होने लगता है। जैसे मेघ नदी, तालाब, समुद्र, पोखर, नाली, घड़ा सभी में एक ही जल होते हुए भी उसके अवस्था और स्थान भेद से गुणधर्म भिन्न होते हैं। उसी प्रकार प्रत्येक मानव में एक ही परमात्म

चेतना का निवास है किन्तु अज्ञान, माया और कर्मों के मल से ढके होने के कारण उसके प्रकाश में तारतम्य है। कहीं प्रकाश अधिक है, कहीं कम और कहीं अधिक तमोगुण आवृत्त होने की दशा में प्रकाश नहीं होता है। स्वामी रामकृष्ण एक दृष्टान्त से यह बात समझाते थे। जैसे नल में पानी एक ही टंकी से आ रहा है। किन्तु वह जल शौचालय में जानेसे पीने योग्य नहीं रहता उससे मलशुद्धि की जाती है। वही नल बाहर होने पर केवल हाथ पैर और वस्त्र धोने के काम आता है। वही जल जब रसोई के नल में होता है तो पीकर प्यास बुझाने के काम आता है। इसी प्रकार योग साधना करने वालों की उपलब्धि में स्थान और अवस्था भेद से तारतम्य देखा जाता है। जैसे इन्द्रियजय को ही देखा जाय तो उसके पाँच अवयवों पर पूर्ण रूप से संयम हो जाने पर पूर्णइन्द्रियजय कहलायगा अन्यथा एक, दो या तीन भागों का साक्षात्कार होने से उसका वह फल नहीं होगा, जो होना चाहिए। योग दर्शन इन्द्रिय संयम के सम्बन्ध में प्रक्रिया का संकेत करता है– ग्रहण स्वरूप अस्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रिय **जयः।** अर्थात् इन्द्रिय समूह का ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय और अर्थवत्व इन पाँच प्रकार का इन्द्रियों का ऐश्वर्य है। संयम द्वारा इन पाँचों रूपों को प्रत्यक्ष करने से इन्द्रियजय हो सकता है। इस संयम की आंशिक या पूर्ण सिद्धि के आधार पर योगदर्शन में चार प्रकार के योगियों का वर्णन मिलता है। प्रथम कल्पिक, मधुभूमिक, विशोधित प्रज्ञाज्योति तथा अतिक्रान्त भावनीय। प्रथम कल्पिक योगियों की स्थूल समाधि (वितर्कानुगत) में कुछ कुछ स्थिति होती है। अतः इनमें अन्तर्ज्योति का स्फुरण होना प्रारम्भ ही होता है। ज्योति की अभी शुद्धि नहीं होती। अतः इन निम्न श्रेणी के योगियों में विभूतियों की अभिव्यक्ति नहीं होती। पहली सीढ़ी पार करने पर मधुमती भूमि पर पदार्पण करने वाले द्वितीय कोटि के योगी होते हैं। इनके चित्त अत्यन्त विशुद्ध हो ने से ऋषि, अप्सरा देवता उसके सामने उपस्थित होकर नाना प्रकार के प्रलोभन देकर उन्हें लुभाते है। जिससे उसमें आसक्ति और अहंकार बढ़ने लगता है। यह द्वितीय अवस्था ही योगियों के लिए परीक्षा की स्थिति है। जो सद्‌गुरू के कड़े अनुशासन को स्वीकार कर इन प्रलोभनों की परवाह न कर आत्म साक्षात्कार के साधक पथ पर चलते रहते हैं उन्हें तीसरी विशोधित प्रज्ञाज्योति अवस्था प्राप्त होती है। इस अवस्था में ही योगी पूर्वरूप से उपर्युक्त इन्द्रियजयी और भूतजयी बन जाता है। उसका शरीर वज्रतुल्य बन जाता है। अविगा महिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ उसमें उपस्थित हो जाती हैं। पंचमहाभूत उसपर प्रभाव नहीं करते। फलस्वरूप मनोजवित्व, विकरणभाव तथा मूल प्रकृति पर योगी विजय प्राप्त करता है। यही मधु प्रतीक सिद्धियाँ कहलाती हैं इस अवस्था में योगी अपने संकल्प बल से समस्त प्रलोभन की वस्तुएँ स्वयं निर्मित करने की सामर्थ्य वाला हो जाने से उसका चित्त वैराग्य युक्त हो जाता है। वह सृष्टि स्थिति और संहार की शक्ति वाला बन जाता है। इसके बाद चौथी अवस्था अतिक्रान्त भावनीय अवस्था आती है। यहाँ योगी अस्मिता तत्व में प्रतिष्ठित होने से सर्वज्ञ हो जाता है। यहाँ त्रिगुण का राज्य पर वैराग्य के द्वारा समाप्त हो जाता है। इसे विशोका सिद्धि कहा गया है। यही जीवन्मुक्त अवस्था है। यहीं से परम पद की स्थिति है जिसे स्वरूप प्रतिष्ठा कहा गया है।

* * *

मङ्गलद्वादशमंजरीस्तवः

रचयिता : **श्री त्रिपुरानन्द, लक्कावरम् (आं. प्र.)**

अनुवादक : **श्री हरप्रसाद भारद्वाज, टूण्डला**

ध्यानम्—

१— **शुद्धस्फटिक तेजसं गुरुवरैस्सेव्यंजटाधारिणम्**
स्वात्मन्यस्त मनोनुबुद्धिविभवं पद्मासनस्थं विभुम्।
वेदेषूपनिषत्सु संस्तुतपदं कैवल्यशृंगाग्रगम्।
विश्वेशं गुरुरामलालमनिशं ध्यायामि हंसात्मकम्॥

अर्थ— शुद्धस्फटिक मणि के समान तेजसे युक्त, श्रेष्ठ गुरुजनों के द्वारा सेवनीय, एवं सुन्दर जटाओं को धारण करने वाले, मंत्र एवं बुद्धि के वैभव को अपने में ही स्थित रखने वाले, तथा पद्मासन में विराजमान, सर्वव्यापक, वेदों तथा उपनिषदों में प्रशंसित पद को प्राप्त करने वाले, कैवल्य मोक्ष के शिखर के अग्रगामी सर्वेश्वर एवं हंसात्मक परमगुरु श्री प्रभुरामलाल जी का नित्य ही ध्यान करता हूँ।

स्तवः— (१) **ओंकारनन्दनाराम नवकल्पक रूपिणे।**
सिद्धगुहानिवासाय रामलालाय मंगलम्॥

अर्थ— ॐकार रूपी परब्रह्म में रमण करने वाले, नवकल्पकरूपी एवं सिद्धगुफा सवाँई धाम में निवास करने वाले परमगुरु श्री प्रभुरामलाल जी हितकारी होवें।

(२) **नतानेकमुनीन्द्राय चित्तनैर्मल्य दायिने।**
सिद्धगुहा निवासाय गुरु रामाय मंगलम्॥

अर्थ— अनेकों मुनीश्वरों के द्वारा प्रणाम किये जाने वाले, चित्त को निर्मलता प्रदान करने वाले, सिद्धगुहा सवाँई धाम में निवास करने वाले परमगुरु श्री प्रभुरामलाल जी मंगलमयी हों।

(३) **मोक्षदाय च मुख्याय मेधा प्रज्ञाप्रदायिने।**
सिद्धगुहा निवासाय प्रभुरामाय मंगलम्॥

अर्थ— मोक्ष के प्रदाता, योगियों में प्रमुख, मेधा—प्रज्ञा नामक बुद्धि के देने वाले, सिद्धगुहा सवाँई में रहने वाले परमप्रभु श्री रामलाल जी कल्याणकारी होवें।

(४) **भद्राय भवरूपाय भागवन्ती सुताय च।**
सिद्धगुहा निवासाय योगरामाय मंगलम्॥

अर्थ— कल्याणस्वरूप एवं शिवरूपधारी तथा भागवन्ती देवी माता जी के सुपुत्र, सिद्धगुफा सवाँई धाम में निवास करने वाले एवं सिद्धयोग में ही रमण करने वाले श्री प्रभुरामलाल जी सुमंगलमयी हों।

(५) गम्याय गम्यबोधाय **गंडारामतपोजन्ये।**
सिद्धगुहा निवासाय **सिद्धरामाय मंगलम्॥**

अर्थ— भक्तों के द्वारा सरलता से प्राप्त होने योग्य, तत्व ज्ञान को प्राप्त करने वाले एवं श्री गंडाराम

जी महाराज के तप की अग्नि स्वरूप, श्री सिद्धगुफा सवाँई धाम में निवास करने वाले एवं परमसिद्ध श्री प्रभुराम लाल का मंगल करें।

(६) वरप्रदाय वन्द्याय भक्तवत्सलमूर्तये।
सिद्धगुहा निवासाय वेदरामाय मंगलम्।।

अर्थ– भक्तों को वरदान देने वाले एवं परमवन्दनीय, तथा भक्त वत्सलता की मूर्ति स्वरूप, सिद्धगुहा सवाँई धाम में निवास करने वाले, एवं ज्ञान स्वरूप श्री प्रभुराम लाल जी मंगलकारी हों।

(७) तेजोराशि समुद्भूत शिष्य सिद्धसुदीद्भुवे।
सिद्धगुहा निवासाय मोक्षरामाय मंगलम्।।

अर्थ– तेजः समूह से उत्पन्न तेज से शिष्यों को सिद्धप्रकाश प्रदान करने वाले तथा सिद्धगुफा सवाँई धाम में निवास करने वाले, मोक्ष स्वरूप श्री प्रभुरामलाल जी मंगल प्रदाता हों।

(८) राजेश्वरी स्वरूपाय षोडशी मंत्र रूपिणे।
सिद्ध गुहा निवासाय नाथ रामाय मंगलम्।।

अर्थ– राजेश्वरीस्वरूप एवं षोडशी मंत्र रूपी, योगियों के स्वामी, सिद्धगुफा सवाँई धामों में निवास करने वाले प्रभु रामलाल जी सबके कल्याणकर्ता हों।

(९) महाप्रभुपद ध्यान निष्ठात्मने चिदात्मने।
सिद्धगुहा निवासाय चात्मारामाय मंगलम्।।

अर्थ– श्री महाप्रभु के चरणों के ध्यान में निष्ठा रखने वाले एवं चिदात्म स्वरूप, सिद्धगुफा सवाँई धाम में निवास करने वाले, परमात्मस्वरूप में रमण करने वाले श्रीप्रभु रामलाल जी मंगलमयी हों।

(१०) लालित्याय परेशाय सिद्धसंघ धुतांघ्रये।
सिद्धगुहा निवासाय तत्वरामामय मंगलम्।।

अर्थ– परमसौन्दर्य से परिपूर्ण, परमेश्वर स्वरूप एवं सिद्धसमुदाय नित्य जिनके चरणों का प्रक्षालन करता है एवं तत्वों में रमण करने वाले, सिद्धगुफा सवाँई धाम के निवासी परमप्रभु श्री रामलाल जी हितकारी हों।

(११) लास्यलक्ष्यानुलीलाय, सर्वसेव्याय जिष्णेव।
सिद्धगुहा निवासाय विधारामाय मंगलम्।।

अर्थ– प्रकृति के क्रीडास्वरूपलास्य के लक्ष्य के अनुकूल लीलाधारी तथा सभी पुरुषों के सेवनीय एवं विजय स्वरूप सदैव तत्वज्ञान में रमण करने वाले सिद्धगुफा सवाँई धाम में निवास करने वाले महाप्रभु श्री रामलाल जी मंगलमयी हों।

(१२) यज्ञेशाय महेशाय कुंडलीस्पंद हेतवे।
सिद्धगुहा निवासाय रामलालाय मंगलम्।।

अर्थ– यज्ञों के स्वामी, शिव स्वरूप एवं कुंडलिनी जागृति के प्रमुखहेतु, सिद्धगुफा सवाँई धाम में निवास करने वाले श्री प्रभुरामलाल जी कल्याणकारी हों।

* * *

योगविभूतियों से मण्डित योगिनी चुड़ाला

श्रीमती सरिता भारद्वाज सांख्ययोग आचार्य, दिल्ली

नारी की महिमा सब कालों में रही है। भगवान शिव, शक्ति के संयोग से शक्ति युक्त होकर सृष्टि के जीवों का उद्धार करते हैं। महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकाली नारी की ही शक्ति का ही सात्विक, राजसिक और तामसिक रूप है। वर्तमान समय में नारी जागरण की विश्व व्यापी लहर चल रही है। गहराई से विचार करने पर क्या यह सत्य नहीं है कि नारी ने बाजारू बनना स्वीकार कर अपनी वास्तविक शक्ति को खोया है और कानूनी अधिकार होने के बावजूद समाज में अपना स्थान बनाने में पीछे रह रही है। एक ओर समाज की कुत्सित मनोवृत्ति उत्तरदायी है तो दूसरी ओर वह स्वयं स्वतन्त्रता के नाम पर अर्द्धनग्न अवस्था में रहकर लोगों के मनों को खराब करके समाज में कुप्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करती है। मोडलिंग, चलचित्रों की कामुक भूमिकाओं, विश्वसुन्दरी बनने की अंधी दौड़ में नारी ने अपने शील और सत्व को बेच दिया है। सच्चा सौंदर्य हाड़–चाम में नहीं, नारी के शील गुणों और उसकी आध्यात्मिक शक्तियों में हुआ करता है। उसके लिए सती सावित्री बने बिना कोई और मार्ग नहीं है। कहाँ तो नारी भरत, प्रहलाद, शिवा और विवेकानन्द जैसे पुरुष रत्नों की माँ होने का गौरव प्राप्त करती थी। कहाँ आज हर बिकने वाली चीज का वह लेबिल बन कर आत्म गौरव को गिराती चली जा रही है। संविधान में उसे चाहे कितना ही आरक्षण मिल जाय। जब तक वह अपने अन्दर योग बल और आत्म–तेज का विस्तार नहीं करेगी तब तक ब्यूटी पार्लरों के नकली सौंदर्य से स्वयं को और समाज को विनाश के गर्त में ले जाएगी। उसकी सन्तान दुःशील और दुश्चरित्र होगी ही। इसे किसी तरह रोका नहीं जा सकेगा। यदि साँचा ही विकृत होगा तो उसमें ढली हुई वस्तु कैसे सुकृती पैदा होगी। नीतिकारों का कहना है कि पिता के दोष से सन्तान मूर्ख होती है और माँ के दोष से वह दुःशील और दुश्चरित्र हुआ करती है। वंश दोष से कायर तथा अपने निरुद्यमी स्वभाव के कारण दरिद्र हुआ करती है। समाज को उन्नत बनाने में नारी का दायित्व सर्वोपरि है। यदि वह मर्यादा में रहकर योगनिष्ठ बन जाय तो पति, पुत्र, पुत्री तथा अन्य सम्बन्धियों को सद्गति प्रदान कर सकती है। महर्षि वशिष्ठ ने भगवान श्रीराम को यही उपदेश योग वशिष्ठ में दिया था। उन्होंने श्री राम को कहा हे राम ! स्त्रियों को कभी निरादर की दृष्टि से न देखो। जो अच्छे संस्कारों की स्त्रियाँ हैं वे अपने पति को घोर संसार सागर से पार करने की नौका का कार्य करती हैं। तुलसी को तुलसीदास बनाने वाली रत्नावली ही तो थी। अत्यन्त गहन मोह सागर में पतित अपने पति को योगनिष्ठ कुलांगनायें चुड़ाला की तरह पार उतार देती हैं।

''शास्त्रार्थ गुरु मंत्रादि तथा नोत्तारण समम्।
यथैता: स्नेह शालिन्यो भर्तृणां कुल पोषित:।।
सखा भ्राता सुहृद् भृत्यो गुरुर्मित्रं धनम् सुखम्।
शास्त्रमायतनम् दास: सर्वं भर्तु: कुलांगना:।।

सर्वदा सर्व प्रयत्नेन पूजनीया: कुलांगना:।
लोकद्वय सुखं सम्यक् सर्वं यासु प्रतिष्ठितम्॥

अर्थात् शास्त्र, गुरु, मन्त्र आदि साधन इस मोह सागर से पार करने में इतने समर्थ नहीं है जितनी कि स्नेह और ममतामयी कुलीन नारियाँ। शील सदाचार सम्पन्न देवियाँ अपने पति की सखा, बन्धु, मित्र, नौकर, गुरु, धन, सुख, शास्त्र मन्दिर आदि सब कुछ 'औल इन वन' है। यदि ये कृपा कर दें तो नरक जैसा घर भी स्वर्ग बन सकता है। यदि ये विपरीत बुद्धि बन जायें तो स्वर्ग जैसे घर को भी नरक बना दे। इसलिए सद्गृहस्थों को सब प्रकार से इनके मन को आदर भाव से परिपूरित कर रखना चाहिए क्योंकि इनके ऊपर ही लोक और परलोक दोनों का सुख पूर्ण रूपेण निर्भर है।

गुरुदेव वशिष्ठ के इन उपदेशों को सुन कर भगवान श्री राम ने जिज्ञासावश पूछा—हे गुरुदेव ! क्या कोई ऐसा उदाहरण मिलता है जिससे यह बात स्पष्ट हो सके कि योगनिष्ठ नारी नाना प्रकार की योग विभूतियों से समन्वित होकर अपने पति को भी योगी बना देती है। और उसके लोक—परलोक दोनों को सुधार देती है। श्री वशिष्ठ ऋषि ने श्री राम के मनोभावों के समक्ष उन्हें महायोगिनी चुड़ाला का उपाख्यान सुनाया।

हे वत्स श्री राम ! आत्मज्ञान तथा योगाभ्यास करके स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर सकती हैं। उनका पतन तो वासना की कीचड़ में फँस जाने से होता है। एक बार दृढ़ निश्चय करके वे योगाभ्यास के मार्ग पर आरूढ़ हो जायें तो धुन की पक्की होने के कारण उनकी जीवन मुक्ति में कोई सन्देह ही नहीं। आध्यात्मिक ज्ञान का अधिकार प्राणी मात्र को है। जब तक अपने मन में यह विचार बैठा है कि हम कुछ नहीं कर सकते तब तक कितने ही अच्छे उपदेश हों, उनसे कल्याण नहीं होगा। एक बार मन में दृढ़ संकल्प होने पर संसार की सारी बाधा घुटने टेक देंगी। यदि स्त्रियाँ अपने अन्दर के आत्म तेज को पतिव्रत धर्म के पालन द्वारा प्रकट कर सकें तो अपने पति और सन्तान को रानी चुड़ाला और मदालसा की तरह आत्म—ज्ञान से परिपूर्ण कर सकती हैं।

वत्स राम ! पहले कल्प के द्वापर युग में मालव देश में एक परम धार्मिक और प्रतापी शिखिध्वज नाम का नृपति था। उसका विवाह सौंदर्य और शीलयुक्त परम विदुषी राज—कन्या चुड़ाला से हुआ। सौराष्ट्र नरेश ने अपनी पुत्री को प्रारम्भ से सास—ससुर ननद—देवरानी जिठानी आदि से यथा योग्य सत्कार और सेवा पूर्ण व्यवहार करने की शिक्षा दी थी। सदा मधुर और स्नेहपूर्ण वचनों से सबके मन को शान्ति और शीतलता की अजस्र अमृतधारा से अभिषिक्त करने का उसे अभ्यास कराया था। अतिथि सत्कार और साधु सेवा का पाठ उसने अपने पिता के घर पर पढ़ लिया था। राजा—रानी में इतना घनिष्ठ प्रेम और आकर्षण था कि वे दो शरीर होते हुए सदा एक प्राण बने रहते थे। न पति रानी के मन को दुःखाने वाला काम करता था और न रानी ही पति के मन को किसी प्रकार के आचरण से दुःखी करती थी। योगिनी अनसूया ने भगवती सीता को जिस पतिव्रत धर्म का उपदेश दिया है—''**काय वचन मन पतिपद प्रेमा। एकहि धर्म एक व्रत नेमा॥ सपनेहु पर पति देखहिं कैसे। भ्राता पिता बन्धु निज जैसे॥** आदि आदि उसकी रानी साकार मूर्ति थी। राजा शिखिध्वज भी एक पत्नी व्रती था तथा अन्य नारियों को कामुक दृष्टि से न देख कर 'पर तिय मात समान' का आचरण करता था। '**जहाँ सुमति तँह सम्पति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निधाना॥** इस कथन

के अनुसार जहाँ पति–पत्नी में प्रेम हो, सद्भाव हो दोनों एक दूसरे से संतुष्ट हों वहाँ घर में सभी प्रकार की सुख समृद्धि, नीरोगता, यश–कीर्ति तथा ईश्वर भक्ति स्वत: होने लगती है। दोनों ही यौवनावस्था में धर्म पूर्वक समस्त वैभवों का भोग भोगते थे।

भोग भोगते–भोगते उन्होंने अनुभव किया कि **''भोगा: न भुक्ता: वयमेव भुक्ता:''** अर्थात् भोगों से हृदय में शान्ति और तृप्ति नहीं मिल पाती। जीवन की मूल्यवान घड़ियाँ हाड़–मांस के नश्वर देह को ही सत्य मानकर सजाने संवारने में बीत गईं। जिस शरीर को सुन्दर समझ कर उस पर गर्व करते थे। आसक्त होते थे, वह धीरे–धीरे कम हो रही है। बूँद–बूँद रिसने से जैसे घड़ा खाली हो जाता है वैसे ही श्वासों का खजाना खाली होता जा रहा है। राज्य का सारा ऐश्वर्य और मन की इच्छायें दोनों कभी शान्ति नहीं दे पायेंगी। क्या मनुष्य जीवन इसी प्रकार वासना और भोग की अग्नि में नष्ट करने को है ? शरीर और इन्द्रियों के सुख तो कूकर–शूकर को भी मिल जाते हैं। कौन सा ऐसा सुख है जो असुन्दर को भी सुन्दर बना देता है, दरिद्र को भी धनवान बना देता है ? जो क्षण भंगुर न होकर स्थायी है ? आग में घी डालते रहने से आग और प्रज्ज्वलित होती रहती है, शान्त नहीं होती। विषय सुख भोगने से त्रिकाल में भी इच्छायें और अशान्ति कभी मिटने वाली नहीं। मन का स्वभाव है कि जो सुख पाता है उससे घृणा करने लगता है और जो प्राप्त नहीं उसकी ही इच्छा करता है। क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है जिससे जो सुख प्राप्त है वह कभी नष्ट न हो ? क्या कोई ऐसी भी तृप्ति है जिसे पा लेने के बाद फिर कुछ और पाने की इच्छा ही नहीं होती ? पति पत्नी दोनों विवेक और विचारशील थे। संसार की असारता का विचार करने लगे। जब भी अवसर मिलता महापुरुषों, ज्ञानीपुरुषों और धर्मगुरुओं का सत्संग करते।

विचार करते करते उनके मन में भोगों से विरक्ति होने लगी। एक दिन उन्होंने राज्य के प्रख्यात विद्वानों की सभा बुलाकर उनसे प्रश्न किया– जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है ? मनुष्य को सच्चा सुख, तृप्ति और शान्ति कहाँ और कैसे मिल सकती है ? विद्वानों ने एक मत से कहा–महाराज ! आत्म ज्ञान होने पर ही सच्चा सुख, शान्ति और तृप्ति उपलब्ध हो सकती है। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य परम शान्ति और परम आनन्द और आत्म–ज्ञान प्राप्त करना है। आत्म–ज्ञान योग साधना से ही सम्भव है। आत्म ज्ञान में मन, बुद्धि, चित्त और इन्द्रियाँ स्थिर हो जायं तो संसार के समस्त विषय सुख नीरस लगने लगते हैं। परमानन्द का साम्राज्य पाकर मनुष्य शहंशाहों का भी शहंशाह हो जाता है। दौड़ तभी तक है जब तक कुछ पाना बाकी है। जब आत्म तृप्ति का अनुभव हो जाय तो फिर किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए विषय, इन्द्रियों तथा संसार की गुलामी नहीं करनी पड़ती। न किसी से राग होता है न द्वेष। न घृणा न आसक्ति। सर्वत्र समभाव में स्थित हो कर योग की समतावस्था प्राप्त करके मानव जीवमुक्त हो जाता है।

विद्वानों के उपदेश को गाँठ में बांधकर राजा और रानी गुरुदेव की शरण में गये और योग साधना की शिक्षा प्राप्त कर योगाभ्यास में तत्पर हो गये। रानी अधिक चतुर, विदुषी और लगनशील स्वभाव की थी। एक निष्ठ होकर मन्त्र जप, ध्यान तथा सूक्ष्म आहार तथा प्राणायाम द्वारा उसने थोड़े ही समय में दिव्य शक्तियों को प्राप्त कर लिया। उसका मुख–मंडल सूर्य की तरह अलौकिक तेज से दीप्त रहने लगा। हृदय आनन्द की लहरों से तरंगित रहने लगा। नेत्रों से प्रेम की अमृत वर्षा होने लगी। वाणी में शीतलता, धैर्य और

माधुर्य प्रस्फुटित होने लगा। उसे आत्मज्ञान प्राप्त हो गया। राजा अपनी रानी की इस दशा को देख कर हैरान होने लगा। वह भावना–प्रधान न होकर विचार प्रधान अधिक था। इसलिए संकल्प–विकल्प, तर्क और संशय में गोते खाता रहता। उसे ध्यानानुभव नहीं हुए। रानी ने अनेक प्रकार की युक्तियों से राजा को योग सिद्ध बनाने का बहुत यत्न किया किन्तु राजा रानी की बातों की ज्यादा परवाह नहीं करता था। वह रानी को स्त्री समझ कर उससे शिक्षा और उपदेश प्राप्त करने में अपना अपमान समझता था। रानी ने योगाभ्यास से प्राप्त नाना प्रकार की विभूतियों का प्रदर्शन कर राजा को योग पथ पर दृढ़ता से आरूढ़ करने के बहुत से उपाय किये। परचित्त ज्ञान, दूर–दर्शन, दूर–श्रवण, आकाश गमन आदि योग विभूतियों को प्रत्यक्ष दिखा कर रानी ने राजा को विश्वास दिलाया कि योगाभ्यास में सफल होने पर योगी में ये सभी बड़ी–बड़ी ताकतें आ जाती है। हे स्वामी ! यदि मैं अबला होकर भी ये सब ताकतें पा सकती हूँ तो आप तो पुरुष है, क्या नहीं कर सकते ? रानी के इतने सारे प्रयत्नों के बावजूद राजा की बहिर्मुखी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी और एकाग्र नहीं हो पा रही थी। उसके अन्तर्मन में देहात्मभाव बहुत दृढ़ता से जमा हुआ था। उसके मन में यह मिथ्याभिमान बना रहता कि पुरुष स्त्री से अधिक बुद्धिमान और शक्तिशाली है। उसे स्त्री क्या सिखा सकती है ? बिना अधि क अभ्यास के सारी यौगिक शक्तियाँ उसमें स्वतः आ ही जायेंगी।

योग साधना में असफल होने पर राजा आत्मग्लानि से भर गया। उसने निश्चय किया कि अब वह अपना राजपाट छोड़ कर, निर्जन वन में जाकर योगाभ्यास कर सिद्धि लाभ करेगा। रानी ने राजा को बहुत समझाया कि वन में जाने की क्या जरूरत है ? '' जिनको घर मे न बनै कबहुं उनको वन में क्या बनि है। यदि घर राग–द्वेष का चौराहा न हो तो घर से बढ़कर सुविधा युक्त स्थान और कोई नहीं है। जो लोग घर को ही आश्रम और मन्दिर बना लेते है, उनका भजन ठीक हो जाता है। हाँ, जिनके घर में नाना प्रकार के प्रपंच, गुण वृत्ति विरोध, विघ्न–बाधायें और झंझट है उन्हें एकान्त स्थान मे वनस्थली का आश्रय लेना चाहिये। जिन्होंने घर में ही अपना मन एकाग्र बना लिया है, आत्म संयम और वैराग्य में जो रंग गये है उनके लिए घर भी वन जैसा है और वन भी घर जैसा है। अन्यथा – 'वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम्' अर्थात् मन में भोग वासना का रोग लगा है तो वन में जाकर भी भोगों की इच्छा बलवती होगी और साधक को नाना प्रकार से नाच नचा डालेगी। घर में शीत–उष्ण से रक्षा का साधन, क्षुधा निवृत्ति एवं शरीर रक्षा का साधन तथा पंचेन्द्रिय निग्रह का तप, हानिलाभ, सुख दुःख के द्वन्द्व सहन का तप स्वाभाविक रूप से होता रहता है। इसलिए गृहस्थ में रहकर आत्मज्ञान को पाना असम्भव नहीं है। वन मे हिंसक जीव–जन्तुओं से आत्मरक्षा करने के लिए चिन्तित रहना पड़ेगा। घर में भी चीते, भेड़िये, श्रृंगाल, सर्प–बिच्छु की भांति हर समय त्रास देने वाले अपने संबंधी कुटुम्बी ही होते है फिर वन में और क्या मिलेगा ? रानी ने बहुत समझाया कि आत्मज्ञान के लिए अपने विघ्नरहित, शांत, तपोमय जैसे घर को छोड़कर वन में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इतना समझाने पर भी राजा नहीं माना और राज–पाट को त्यागकर रात्रि में रानी चुड़ाला को गहरी नींद में सोता छोड़कर शिकार के बहाने वन चला गया। वहाँ पहुँचकर एकांत गुफा में उसने योगानुष्ठान किया। किन्तु मन एकाग्र नहीं हुआ। न ध्यानानुभव हुए। वह तीर्थाटन पर निकल पड़ा, फिर भी उसको कोई आत्मानुभूति नहीं हुई।

इधर बुद्धिमत्ती योगिनी चुड़ाला ने प्रातः राजा को शैय्या पर न देख अपनी दूरदृष्टि से जान लिया कि राजा वन में भटक रहे है, उन्हें कुछ भी अनुभूति नहीं हो पा रही है। रानी अपने मन में विचार करने लगी। राजा के बिना राज्य बरबाद हो जाएगा। जब शत्रुओं को इस बात का अहसास हो जाएगा तो आक्रमण कर राज्य को पराधीन बना सकते है। चारों और अराजकता फैल सकती है। उसने युक्ति से मंत्रियों को बुलाकर यह समझा दिया कि राजा दूसरे देशों के निमंत्रण पर बाहर घूमने गए हैं और राज्य का संचालन का अधिकार रानी को दे गए हैं। रानी चुड़ाला ने राज्य का सारा कार्यभार अच्छी तरह से संभाल लिया। राजा को उसने अपनी योग–सिद्धियों के बल से ढूंढ लिया तथा आकाश मार्ग से सूक्ष्म शरीर से उड़कर राजा के समीप पहुँच गई। राजा को व्याकुल और अशांत चित्त देखकर रानी को दया आ गई। उसने निश्चिय किया कि किसी प्रकार राजा को योग–साधना में सफलता प्राप्त करानी चाहिए। उसने सोचा कि राजा के मन की पहले जैसी अवस्था है तथा उपदेशों का उनके ऊपर कोई असर नहीं पड़ेगा।

रानी चुड़ाला अपने योगबल से अस्मितानुगत समाधि में प्रविष्ट हो चित्त निर्माण करके, का रूप बनाकर राजा के समक्ष उपस्थित हो गयीं। राजा, ऋषि कुमार को अपने समक्ष आया देख प्रसन्नता से भर गया। उसे लगा मानो उसके योगाभ्यास तथा स्वाध्याय के बल से ऋषि उसे दर्शन देने उपस्थित हुए हैं। ऋषि कुमार का आतिथ्य सत्कार कर राजा ने उनसे परिचय पूछा। ऋषिकुमार ने कहा—महाराज ! मैं, देवर्षि नारद का पुत्र कुम्भज हूँ और देवलोक से पृथ्वी पर विचरण करने की इच्छा से यहाँ आया हूँ। राजा बोला— महाराज ! महर्षि नारद तो अविवाहित है। आप उनके पुत्र कैसे हो सकते है। ऋषिकुमार ने कवीश से अपने जन्म की सारी गाथा राजा को सुनाकर आश्वस्त कर दिया। दोनों में गहरी मित्रता हो गई। रानी उधर राज्य सम्भलती थी और इधर राजा के पास निर्माण चित्त से ऋषिकुमार के रूप में रहती भी थी। उसी रूप में रानी चुड़ाला ने राजा को योगाभ्यास कराया और आत्मज्ञान दिया। जिस प्रकार महर्षि कपिल ने अपनी शिष्या आसुरी को निर्माणचित्त से योग–विद्या का अभ्यास कराया था, उसी प्रक्रिया से रानी ने भी राजा का कल्याण किया। आत्म–भाव में परिपक्व होकर राजा जीवन मुक्त हो गया। अब उसके मुख पर सदैव प्रसन्नता झलकती थी। मन एकाग्र, शांत और आत्मतृप्त था। किसी प्रकार के विघ्न से भी उसकी शांति भंग नहीं होती थी।

एक दिन रानी गुरु रूप में राजा की परीक्षा लेने उपस्थित हो गई। कुम्भज के रूप में वह बहुत व्याकुल होकर राजा से कहने लगी—महाराज ! देवलोक से आभूषण और विचित्र वेश धारण किए हुए दुर्वासा ऋषि आ रहे थे। उनका स्त्रियों जैसा वेश देखकर मुझे हंसी आ गई। मुझे हंसी उड़ाते देखकर, उन्होंने स्त्री होने का शाप दे डाला है। मुझे शापवश रात्रि में स्त्री बन जाना पड़ेगा। राजन ! इसी से मैं दुखी और लज्जित हूँ। राजा को आत्मज्ञान सिद्ध हो गया था। उसने कहा—हे ऋषिवर ! इसमें दुःखी होने की क्या बात है। स्त्री हुई तो क्या ? पुरुष हुआ तो क्या ? दोनों ही एक समान हैं, न कोई भला है न कोई बुरा। स्त्री पुरुष तो शरीर का रूप है, आत्मा न स्त्री है न पुरुष। दोनों ही आत्मज्ञानीहो सकते हैं जो जिस स्थिति में हो, उसी में प्रसन्न रहना चाहिए। प्रसन्नता आत्मा का प्रकाश है। उसे किसी बाह्य आधार की अपेक्षा नहीं है। रानी को राजा के इस प्रकार के मनोभाव सुनकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। अब रानी राजा के पास दो रूपों में निर्माण चित्त में ही रहने लगी। दिन में ऋषिकुमार के रूप में और रात्रि में सुन्दर रमणी के रूप में। दोनों में गहरी मित्रता थी। दोनों

साथ–साथ खाते, पीते तथा सोते थे किन्तु राजा के मन में कोई विषय–विकार न आता। राजा की निर्विकार अवस्था की परीक्षा लेने के लिए एक रात रमणी बनी रानी ने अपनी कामेच्छा राजा के समक्ष प्रस्तुत की। राजा ने कहा—जब तक शरीर है और इन्द्रियाँ स्वस्थ हैं, तब तक शरीर में भोग–भोगने की लालसा पैदा होना स्वाभाविक है। ज्ञानी पुरुष उनको हठ पूर्वक दबाकर शांत नहीं करता अपितु आत्मसुख की अनुभूति से भोग को भी योगमय बना देता है। भोगों को भोगने या न भोगने से आत्मा का कुछ बनता बिगड़ता नहीं है। यदि तुम्हारा मन विकारयुक्त है और विषय–वासनाओं में लिप्त है तो अपने अनुरूप पति का वरण कर उसकी पत्नी बन जाओ ताकि मन शांत हो सके।

राजा का विचार सुनकर कुम्भज ऋषि बोला—महाराज ! आप मेरे परम प्रिय हैं। आपसे मेरा मन पूरी तरह मिलता है। आपका मुझमें और मेरा आपमें प्रेम है। ज्ञानी लोग ऐसा बोलते हैं कि समान मनोवृत्ति वाले स्त्री पुरुषों के संग रहने से ही आनन्द होता है इसलिए मेरे लिए आपसे बढ़कर दूसरा पति नहीं हो सकता। यदि तुम ऐसा समझ रहे हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। शरीर के संबंध से ही व्यवहार के लिए नाते–रिश्ते हैं। आत्मा तो सबका परमप्रिय है। उससे बढ़कर संसार में और कोई पदार्थ नहीं है। यदि तुमको इसमें सुख मिलता है तो मुझे कोई सुख या दुःख नहीं है। पूर्णिमा की चाँदनी में कुम्भज ऋषिपुत्र के दूसरे रूप में बनी मदनिका ने शास्त्रीय विधि से राजा से विवाह कर लिया और वे दोनों रात्रि में पति पत्नी के रूप में रहने लगे। लेकिन राजा के मन में किसी प्रकार का कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ क्योंकि वह आज्ञाचक्र के ऊपर अपने मन को निर्विकारी स्थिति में स्थित कर चुका था। गीता में भगवान ने कहा—'**गुणाः गुणेषु वर्तन्ते, इति मत्वा न सज्जते।**' गुण गुणों में बरतते रहते हैं। आत्मज्ञानी कमल के पत्ते की तरह पाप–पंक से अछूता बना रहता है। राजा पूर्ण शांत और विगत अभिमान हो चुका था। रानी को राजा की शाम्भवी स्थिति देखकर परम प्रसन्नता होती थी। उधर स्थूल शरीर से वह अपना राजकार्य कुशलता से करती थी। रानी राजा को पूर्ण योगिराज बनाना चाहती थी। अतः उसने पुनः उसकी जीवनमुक्त अवस्था की परीक्षा लेने का निर्णय किया। उसने योगबल से इन्द्र और इन्द्रलोक की सृष्टि कर दी। इन्द्रलोक के देवता राजा के सम्मुख हाथ जोड़कर, स्वर्ग के नाना प्रकार के भोग भोगने के लिए चलने की प्रार्थना करने लगे। राजा ने देवताओं से कहा कि तुम किस देवलोक की बात कर रहे हो। मैं तो जिधर भी दृष्टि डालता हूँ, चारों ओर आनन्द, सौन्दर्य, तृप्ति और शांति के सिवाय और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता। मुझे स्वर्ग के भोग हेय लगते हैं। मेरी किसी भोग की इच्छा नहीं है। पुनः रानी ने राजा की योगसिद्धि की परीक्षा ली। जब राजा सायंकाल को सन्ध्यावन्दन करने गंगातट पर गए हुए थे, रानी ने योगबल से एक तेजस्वी सुकुमार युवक की रचना कर दी। राजा के लौटने पर वे दोनों परस्पर प्रेम में आलिंगबद्ध होकर राजा की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करने लगे। राजा ने कुटिया में घुसकर जैसे ही यह दृश्य देखा, वे उल्टे पैर वापिस लौट गए, ताकि उनके किसी कार्य से उन्हें उद्वेग न हो। गीता में भगवान कहते हैं—'**यस्मान्नोद्विजते लोकाः लोकोन्नोद्विजते चयः। हर्षामर्ष भयोद्वेगैः** यः सः मुक्तः सुखी **नरः।**' अर्थात् जिस ज्ञानी के किसी व्यवहार से किसी प्राणी को उद्वेग न हो तथा जो किसी के व्यवहार से उद्विग्न न हो, वही वास्तव में हर्ष–शोक, भय से मुक्त सुखी जीवन्मुक्त अवस्था का योगयुक्त है। मदनिका (रानी) राजा के इस प्रकार के भाव देखकर बाहर आकर क्षमा प्रार्थना करने लगी। महाराजा मैं अपराधिनी हूँ।

स्त्री में पुरुषों की अपेक्षा आठगुना अधिक काम होता है। मैं उसके प्रबल वेग को सहन न कर सकी और पर पुरुष में आसक्त हो गई। राजा ने कहा—मदनिके ! मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति किसी प्रकार का दुर्भाव या क्रोध नहीं है। सभी प्राणी अपने–अपने कर्म–स्वभाव और गुणों के अनुसार सुख प्राप्ति की ओर प्रयत्नशील होते हैं किन्तु सच्चा सुख आत्मदर्शन के बिना, बुद्धि शुद्ध हुए बिना नहीं मिलता। इस समय कामेच्छा शास्त्र मर्यादा का उल्लंघन है। अतः शास्त्र मर्यादा की रक्षा के लिए आज से मैं अपनी पत्नी की हैसियत से तुम्हें नहीं रखूँगा। मित्र की भांति पूर्ववत् सुख से रहो। राजा के मन की साम्यावस्था देखकर रानी बहुत प्रसन्न हुई और योगबल से वह अपने पूर्वरूपों का अन्तर्धान कर असली चुड़ाला के रूप में प्रकट हो गई। आश्चर्यचकित राजा को देखकर रानी ने सारे योगरहस्यों को समझाकर उसको विश्वास दिलाया कि उसने ही राजा को योगसाधना में परिपक्व करने के लिए यह सब किया था। रानी के कहने पर राजा जीवन्मुक्त अवस्था में राजधानी लौटकर पुनः कुशलता से राज्य कर प्रजा का पालन करने लगे। महाराज वशिष्ठजी श्रीराम से बोले— हे राम ! यह सुनकर आश्चर्य न करो। स्त्री क्या नहीं कर सकती। वे पुरुषों से अधिक लगनशील और कुशाग्र होती हैं। उनमें भावना प्रधानता होने से देवी गुणों को आकर्षित करने की अधिक शक्ति होती है। इसलिए उन्हें योग में शीघ्र सफलता मिल सकती है। देखा ! रानी चुड़ाला ने राज्य भी संभाला और पति से पहले योग सिद्धि प्राप्त कर योगशक्ति से वन में आकर राजा को जीवन्मुक्त बना दिया। जो स्त्रियाँ विषयभोगों और कामवासनाओं की तृप्ति के लिए अपने शरीर को वस्त्राभूषणों से सजाकर पुरुषों को मोहजाल में फंसाकर नरकगामी बना देती हैं, वे निन्दनीय है। किन्तु जो अपने शील, सदाचार और सेवा से घर को चन्दन–कानन बनाती हैं, वे वास्तव में देवी हैं और पूजनीय हैं। ऐसी देवियाँ यदि किसी पुरुष की सहधर्मिणी बन जाय तो जीवन की गाड़ी के दोनों पहिये ठीक रहने से जीवन के चरम लक्ष्य शाश्वत की प्राप्ति में कोई सन्देह नहीं। समान मनोवृत्ति वाले दम्पत्ति का घर स्वर्ग से बढ़कर है। ऐसे घर में दैवीशक्तियों को यही उपदेश दिया करते थे कि —**'परस्परं देवो भव'**। अर्थात् परस्पर एक दूसरे का सम्मान कर अपने–मन की शक्तियों को बढ़ाते हुए योग की विभूतियों का वरण करो।

***

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं वेत्ति तत्वतः
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।

अर्थात् हे अर्जुन मेरे जन्म और कर्म दिव्य निर्मल अर्थात् अलौकिक हैं वह शरीर को त्याग कर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता। किन्तु मुझे प्राप्त होता है। अतः हमारे प्यारे गुरुदेव की मानवीय भूमिका में उतरने का उद्देश्य–दिव्य सामर्थ्य लेकर, दिव्य ज्योति के साथ, दिव्य प्रयोजन से, दिव्य कार्यों को पहचानना तो दूर रहा उनके आगमन का हेतु जानना भी अति दुर्लभ है।

योगमार्ग में गुरु की महत्ता

पूर्णचन्द्र पन्त

सभी प्रकार की विधायें गुरु के माध्यम से ही प्राप्त की जाती हैं। बिना गुरु के मनुष्य किसी भी विद्या में पारंगत नहीं हो सकता। अक्षरारम्भ से लेकर गणित, विज्ञान, शिल्प, संगीत, सर्जरी, यान्त्रिकी आदि सभी विद्यायें अनुभवी आचार्य ही सिखाते हैं, किन्तु योग मार्ग तो है ही गुरुगम्य। अत: इस मार्ग में गुरु की विशेष आवश्यकता रहती है। बिना गुरु के हम इस मार्ग में एक कदम भी नहीं चल सकते। हम बाहरी संसार के विषय में बहुत कुछ जान सकते हैं किन्तु अपने बारे में हमें कोई भी स्पष्ट जानकारी नहीं होती कि हम कौन हैं, क्या हैं और क्या बन सकते हैं ? अपने गुणदोषों का, मनोभूमि का, आत्मिक स्तर का एवं प्रगति का हमें स्वयं पता नहीं चल सकता, अन्तर्द्रष्टा अनुभवी गुरुदेव ही इस बात को जानते हैं कि—साधक का आत्मिक स्तर क्या है तथा किस प्रकार से इसका कल्याण हो सकता है। इन बातों पर विचार करते हुए तथा उसके पूर्वजन्म के संस्कारों को देखकर वे उसके लिये वही मार्ग बताते हैं जिस पर वह आसानी से चलता हुआ परम कल्याण का भागी बन सके।

यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि योगी गुरु त्रिकालदर्शी हुआ करते हैं। वे अपने शिष्य के वर्तमान जन्म के बारे में ही नहीं अपितु उसके पूर्व के और आगे होने वाले सैकड़ों जन्मों के बारे में अपनी योगशक्ति से जान लिया करते हैं। इसलिये योगमार्ग के पथिक के लिये अनुभवी गुरु का मार्ग दर्शन नितान्त आवश्यक है। उसी के सहारे आध्यात्मिक जगत की यात्रा सुविधापूर्वक होती है। अन्यथा बिना गुरु के योग मार्ग पर चलना तलवार की तेज धार पर चलने के समान कठिन है।

कठोपनिषद् का वचन है—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत्।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति॥

अर्थात् अरे मनुष्यो ! तुम लोग जन्म जन्मान्तर से अज्ञान रूपी निद्रा में सोये हुये हो। आज भी समय है। उठो, जागो और महापुरुषों की शरण में जाकर उनके उपदेश द्वारा अपने कल्याण का मार्ग और परमात्मा का रहस्य समझ लो। आत्मतत्व बड़ा गहन है, उसकी प्राप्ति का मार्ग तलवार की तेज धार पर चलने के समान है। ऐसे दुस्तर मार्ग से सुगमता पूर्वक पार होने का उपाय वे अनुभवी महापुरुष ही बता सकते हैं जो उस मार्ग को स्वयं पार कर चुके हैं। सद्गुरु की रहस्यमयी सत्ता से परिचित न होने के कारण अधिकांश लोगों के मन में गुरु के प्रति तरह–तरह की भ्रान्तियाँ रहा करती हैं, वे उन्हें अपने जैसा एक मरण धर्मा सांसारिक मनुष्य समझते हैं। जिस कारण बहुत से दीक्षित साधक भी अपने गुरुदेव में पूर्ण श्रद्धा नहीं रखते। श्रद्धा में कमी होने पर पूर्ण शरणागति नहीं हो पाती। जिससे वे सद्गुरु की कृपाओं से वंचित रह जाते हैं। उनके लिये गीता में जगद्गुरु श्री कृष्ण की यह चेतावनी है—

अवजानन्ति मां मूढ़ा: मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

मेरी सर्वव्यापकता एवं सर्व शक्तिमत्ता रूप परम भाव को न जानने वाले अज्ञानी लोग सम्पूर्ण प्राणियों के महान ईश्वर तथा संसार के उद्धार के लिये अपनी योगमाया से मनुष्य रूप में विचरण करते हुए मुझ परमेश्वर को अपने जैसा एक साधारण मनुष्य समझते हैं।

श्री कृष्ण का बालसखा एवं परम भक्त अर्जुन तक उनके वास्तविक स्वरूप को नहीं जान सका था। बाद में योगेश्वर श्री कृष्ण के दिव्य योगोपदेश से प्रभावित होकर जब उसने उन्हें परमेश्वर रूप में देखना चाहा तो श्री कृष्ण उसे सावधान करते हुए कहते हैं—

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥

अरे अर्जुन ! तू मुझे अपनी इन आँखों से नहीं देख सकता। अत: मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ इससे तू मेरे योगैश्वर्य को देख। इस प्रकार उनके द्वारा कृपापूर्वक दिव्य दृष्टि दिये जाने पर अर्जुन उनके विराट रूप के दर्शन करने में समर्थ होता है।

इसी प्रकार गुरुदेव भी मनुष्य शरीर में विचरण किया करते हैं, किन्तु सांसारिक व्यक्ति अपनी भौतिक इन्द्रियों से उन्हें तब तक नहीं जान पाता जब तक वे स्वयं से कृपापूर्वक उसे अपने वास्तविक स्वरूप के दर्शन न करा दें। सर्वशक्तिमान परमेश्वर की आचिन्त्य परम सत्ता (सद्गुरु सत्ता) एक समय में भी अनेक शरीरों में न्यूनाधिक रूप से व्यापक रहा करती है। विविध शरीरकारी होने पर भी तत्वत: वे सब एक ही होते हैं उनमें कोई भेद नहीं होता।

सद्गुरु दया के सागर होते हैं उनके लिये कोई अपना या पराया नहीं होता। चाहें उन्हें भजे या न भजे साधक यदि सुपात्र हो तो उनकी कृपा दृष्टि होते दूर नहीं लगती। फिर भी जो साधक अनन्य भाव से उनकी भक्ति करते हैं उन्हें वे अपना स्वरूप समझते हैं अपने में ही मिला देते हैं। योगेश्वर श्री कृष्ण ने गुरुदेव के इस उदार स्वभाव का निम्नलिखित श्लोक में संकेत किया है—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मेद्वेष्योऽस्ति न प्रिय:
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयितेतेषु चाप्यहम्॥

अर्थात्— मैं समस्त प्राणियों में समान भाव से रहता हूँ। न मैं किसी से द्वेष रखता हूँ और न किसी से विशेष प्रेम ही करता हूँ। किन्तु जो पुण्यात्मा नित्य—निरन्तर मेरा चिन्तन करते रहते हैं वे मुझमें वास करते हैं और मैं उनमें वास करता हूँ। गुरुदेव स्वयं में ही एक रहस्य हैं। अत: उनकी प्रत्येक लीला एवं वचनामृत में गूढ़ रहस्य छिपा रहता है। अत: उनकी पवित्र आज्ञाओं के पालन में सदैव तत्पर रहना चाहिये। शिष्य का कर्तव्य है कि वह अपने मन और बुद्धि को गुरुदेव को समर्पित करके सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त होकर निष्काम भाव से एवं निरभिमान होकर उनकी प्रसन्नता के लिये उनके आदेशानुसार सदैव अपनी साधना में लगा रहे। उसे अपनी साध

ना का एवं गुरुभक्ति का लेशमात्र भी अहंकार नहीं होना चाहिये। तथा दूसरे साधकों एवं गुरु भाइयों को अपने गुरुदेव का ही अंश समझकर उनके प्रति आत्मीयता का भाव रखना चाहिये।

गुरुतत्व अत्यन्त गहन है। उसे समझना और समझाना बहुत कठिन है। फिर भी आत्मदर्शी महापुरुषों के निर्णयात्मक सिद्धान्तों के अनुसार मैं इस विषय को स्पष्टीकरण के साथ समझाने का प्रयास कर रहा हूँ—

वेदों में "ओंकार" नाम से और "परब्रह्म" नाम से जिस परात्परसत्ता का वर्णन किया गया है, वही सत्ता **"सद्गुरु सत्ता"** है। उसी सत्ता का महिमागान कठोपनिषद के इस मन्त्र में किया गया है—

भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः।। २।३।३।

सकल ब्रह्माण्डों पर शासन करने वाले परब्रह्म परमेश्वर के भय से ही अग्नि तपता है, इन्हीं के भय से सूर्य तपकर संसार को ऊर्जा और प्रकाश दे रहा है। उन्हीं के भय से इन्द्र, वायु और यमराज ये सब देवता दौड़—दौड़ कर अपना—अपना काम अत्यन्त सावधानीपूर्वक कर रहे हैं।

जब वही परासत्ता किसी मनुष्य शरीर में वास करने लग जाती है तो वह मनुष्य गुरुपद को पा जाता है और सबका पूज्य बन जाता है। सद्गुरु का समस्त योग—ऐश्वर्य उसके अन्दर प्रकट हो जाता है और रिद्धिसिद्धियाँ उसके आदेश की प्रतीक्षा में खड़ी रहती हैं। उसके रोम—रोम में सद्गुरु का प्रकाश हो जाता है। वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश के समान "कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम" की सामर्थ्य वाला बन जाता है तथा महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती स्वरूपा कुण्डलिनी महाशक्ति उस योगी गुरु के नियन्त्रण में रहना स्वीकार कर लेती है। प्रकृति पूरी तरह उसके वश में रहती है। किन्तु प्रकृति के कार्य में वह कभी बाधा नहीं डालता। प्रकृति के नियमानुसार समय आने पर वह अपनी नरलीला को समेट लेता है। तब शरीर न रहने पर भी वह अपने भक्तों एवं संस्कारी जीवों का पहले की तरह ही कल्याण करता रहता है। आवश्यकता पड़ने पर वह समय—समय पर साकार रूप में प्रकट होकर उनकी सहायता करता रहता है। वैसे भी योगी गुरु के लिये भौतिक शरीर और इन्द्रियाँ कोई महत्व नहीं रखती। वह बिना शरीर और इन्द्रियों के भी पुण्यात्माओं के कल्याणार्थ बड़े—बड़े चमत्कारपूर्ण कार्य करता रहता है। जैसे रामचरितमानस में कहा गया है—

बिनु पग चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु वाणी वक्ता बड़ जोगी।।

क्लेश, कर्म, विपाक आदि बन्धनों से मुक्त तथा ज्ञान—विज्ञान तृप्तात्मा होकर परम सिद्धावस्था को प्राप्त हुए योगी महापुरुषों के अन्दर ही वह परात्पर सत्ता वास किया करती है और वे ही सद्गुरु कहलाते हैं।

उन सिद्धयोगियों की भी चार श्रेणियाँ होती हैं—

आनादि महासिद्ध, स्वतः सिद्ध, साधन सिद्ध और कृपासिद्ध।

इन चारों के सिद्धों के अन्दर न्यूनाधिक रूप से सद्गुरु सत्ता प्रकाशित हुआ करती है। शरीरों में पृथकता होने पर भी ये सब तत्वतः एक ही होते हैं। इन सबके अन्दर परम गुरु परमेश्वर का योग—ऐश्वर्य

ही चमकता दिखाई देता है। उसी की शक्ति में ये सब शक्तिमान बने रहते हैं और गुरुपद का गौरव प्राप्त किया करते हैं। ये महापुरुष परम गुरु परमेश्वर के सच्चे प्रतिनिधि होते हैं और उसकी आज्ञा से ही जन कल्याण के कार्य में प्रवृत्त होते हैं। गुरुपद को प्राप्त हुए योगी महापुरुष समस्त सद्गुणों के भण्डार, कृपा के समुद्र और प्राणी मात्र के परम हितैषी होते हैं उनकी यह सबसे बड़ी विशेषता होती है कि वे अपने सम्पर्क में आने वाले भक्तजनों को अपने समान ही बना डालने की सामर्थ्य रखते हैं। जैसे कहा गया है—

पारस में अरु सन्त में बहुत अन्तरो जान।
वह लोहा कंचन करे, वह करे आपु समान।।

संसार में पारसमणि को सबसे दुर्लभ और मूल्यवान समझा जाता है। पारस अपने स्पर्श मात्र से लोहे को सोना बना देती है। पर वह उसे पारस नहीं बना सकता। जबकि गुरुदेव अपने स्पर्श से, दृष्टिपात से या संकल्प से अपने प्रिय शिष्यों को अपने जैसा ही बना देते हैं।

गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊँचा है ? इस सम्बन्ध में अनुभवी सन्तों का कथन है—

हरि सो तू जनि हेत कर, कर हरिजन सों हेत।
माल मुलुक हरि देत है, हरिजन हरि ही देत।।

अर्थात् तुम ईश्वर से भले ही प्रेम न करो किन्तु उसके ज्ञानी भक्त सद्गुरुओं से अवश्य प्रेम करो। क्योंकि ईश्वर तो हमें नाशवान सांसारिक पदार्थों को (धन, पद, प्रतिष्ठा, आरोग्य, लौकिक विषायें, स्त्री, पुत्र आदि को) तथा उनसे प्राप्त होने वाले भोगों को ही देता है किन्तु करुणा सागर श्री गुरुदेव प्रसन्न होकर अथवा अपने प्रिय शिष्यों के विशिष्ट गुणों से रीझकर उन्हें ईश्वर से मिला देते हैं और उन्हें अपना सर्वस्व (ईश्वर) ही दे डालते हैं।

एक अन्य सन्त ने ये ही भाव निम्नलिखित दोहे में व्यक्त किये हैं—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो मिलाय।।

पुराणों एवं उपनिषदों में गुरुतत्व और गुरुभक्ति महिमा का स्थान—स्थान पर वर्णन मिलता है। पद्मपुराण से उद्धत श्री गुरुगीता में गुरुमहिमा पर विशेष प्रकाश डाला गया है। जैसे—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

गुरु ही ब्रह्म है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही भगवान शिव है तथा गुरु ही परब्रह्म परमात्मा है उन श्री गुरुदेव को नमस्कार है।

गुरोः कृपा प्रसादेन ब्रह्मा विष्णु महेश्वराः।
सामर्थ्य तत्प्रसादेन केवलं गुरुसेवया।।

सृष्टि के रचयिता, पालनकर्ता और संहर्त्ता ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी सद्गुरु की आराधना किया करते हैं। सेवा के फलस्वरूप ही सद्गुरु कृपा पाकर वे सामर्थ्यवान और तेजस्वी हैं। उनके अन्दर सद्गुरु का वास होने से ही वे सबके पूज्य और सर्वसमर्थ बने हुए हैं।

गुरुकृपा ही मोक्षप्राप्ति का एकमात्र साधन है जैसे—

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोर्पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा।

गुरुमूर्ति का ध्यान सर्वोत्तम ध्यान है, गुरु चरणों की पूजा ही मुख्य पूजा है, गुरु की आज्ञा ही सबसे बड़ा मन्त्र है और गुरुकृपा ही मोक्ष का मूल साधन है।

गुरुर्देवो गुरुर्धर्मः गुरुनिष्ठा परं तपः।
गुरोः परतरं नास्ति सत्यं सत्यं वरानने।।

भगवान शंकर पार्वती जी से कह रहे हैं—गुरु ही सर्वश्रेष्ठ देवता है, गुरुभक्ति ही सबसे बड़ा कर्म है, गुरुनिष्ठा ही सबसे बड़ी तपस्या है। हे सुन्दर मुख वाली पार्वती ! यह बात सत्य है, सत्य है और सत्य है।

अतः शिष्य का कर्तव्य है कि गुरु मूर्ति स्मरेन्नित्यं गुरोर्नाम सदा जयेत।

गुरुमूर्त्ति स्मरेन्नित्यं गुरोर्नाम सदा जयेत।
गुरोराज्ञां प्रकुर्वीत गुरोरन्यं न भावयेत।।

साधक को गुरुमूर्ति का सदैव हर परिस्थिति में स्मरण करते रहना चाहिये और गुरुमन्त्र का सदा सर्वथा जप करते रहना चाहिये। उसे गुरुदेव की पवित्र आज्ञाओं का बड़ी श्रद्धा और तत्परता पूर्वक पालन करना चाहिये।

उसके लिये यही उचित है कि उसका मन गुरुभक्ति के पवित्र भावों से ही सदा परिपूरित रहे। क्योंकि—

ज्ञान विज्ञान मुक्तिश्च लभ्यते गुरुभक्तितः।
गुरो समन्ततो नान्यत् साध्योऽस्ती गुरु मार्गिणा।।

गुरु की भक्ति से ज्ञान, विज्ञान और मोक्ष प्राप्त होता है। इसलिये गुरुमार्ग पर चलने वाले पुण्यात्मा साधक के लिये गुरु ही एकमात्र साध्य है, गुरुभक्ति ही उसकी साधना है और गुरु की प्रसन्नता ही उसकी सिद्धि है।

गुरु में मनुष्य बुद्धि कभी नहीं रखनी चाहिये और कभी भी अपने मन में यह कुविचार नहीं आने देना चाहिये कि हमारे गुरुदेव का भौतिक शरीर शान्त हो गया है और वे अब इस संसार को छोड़ चुके हैं। ऐसी धारणा रखने वाले व्यक्ति लौकिक सुख एवं आध्यात्मिक योग ऐश्वर्य दोनों से ही वंचित रह जाते हैं। योगमार्ग के पथिक को अपने गुरुदेव में ईश्वर बुद्धि रखनी चाहिये और प्रगाढ़ श्रद्धा और अटल विश्वास रखते हुए अनन्य भक्ति भाव से गुरुदेव की आराधना करते रहनी चाहिये।

शिव पुराण की कैलाश संहिता में स्वयं भगवान शिव ने यह आदेश दिया है—

यथा गुरुः तथैवेशो यथावेशस्तथा गुरुः।
पूजनीयो महाभक्त्या न भेदो विद्यतेऽनयोः।।
योगुरुः सः शिवः प्रोक्तो यः शिवः सः गुरुः स्मृतः।
तस्माद्दिश्री गुरोर्भक्तिः भुक्ति मुक्ति प्रदायिनी।।

(शेष अगले अंक में)

विरह-व्यथित-विनय-वाटिका

कु० रुक्मिणी शर्मा, सहारनपुर

पल–पल बीते दिन गये, दिन पर दिन गये साल।
साल–साल गिन हो परे, नौ विरह के साल।।
विरह–व्यथित इस काल में, नहीं आये इक बार।
रो–रो नैना थके नहीं, मनवा करे विचार।।

मनवा करे विचार ये, आँसू हैं या ढोंग ?
या प्रीति फीकी मेरी, या है मानस रोग।।
लुप्त मति विवेक है, या मगरमछी अँसुवन लड़ी।
अर्पित नहीं गुरु चरणों में, मेरे ही दामन पड़ी।।

मेरे ही दामन पड़ी, मेरा ही मुख धोय।
गुरु चरणन धोये नहीं, निज नैनन दुख होय।।
गम बिछोह का भारी है, मेरे दिल में उठती पीर।
आँसू नाई भाव भी झूठे, कैसे धारूँ धीर।।

कैसे धारूँ धीर संजोऊ, हृदय में सद्भाव।
सद्गुण चित में नहीं बसे, नाही सरल स्वभाव।।
तन संग मन अपावन नाथ, मेरी सूखी प्रेम सरिता।
हे सद्गुरु मुझ दीन–हीन को, दे दो ज्ञान सविता।।

दे दो ज्ञान सविता मेरा, हर लीजे अज्ञान।
दर्शन हेतु धारणा की, अब कर दीजे ध्यान।।
प्रेम तरंगिनी श्रद्धा संग, बहे भक्ति का प्रवाह।
चरण–कमल की ओट में, हो जीवन मम निर्वाह।।

जीवन मम निर्वाह दयानिधि, माँगू दे दो भीख।
विरह–वेदना में पूरित हो, करुण पुकार की चीख।।
जल–हीन–मीन सी तड़फन हो, अरु पश्चाताप की आग।
निरख विवश आप आवन को हों, धाम नेपाल को त्याग।।

धाम नेपाल को त्याग, नाथ, मेरा जीवन भार सँभारो।
गति कर्म की बिगड़ चुकी, पर अब तो आन संवारो।।
विरह–व्यथित–विनय–वाटिका में, सुन लो मेरी टेक।
अनगिन अश्रु के बदले मैं, माँगू आँसू एक।।

माँगू आँसू एक प्रबल, जो लेवे चरण पखार।
दिल पिघला दे आपका, मुझे हों दर्शन साकार।।
दर्शन कर दृग पुलकित हों, मैं छू लूँ चरणार्विन्द।
विरह–व्यथित–विनय–वाटिका विकसें, गुरु भक्ति के अरविन्द।।

विशेष बात—*२२ फरवरी, सन् १९९०, दिन गुरुवार, शिवरात्रि की पूर्व संध्या को सहारनपुर में गुरुदेव का शुभागमन हुआ था। अतः सहारनपुर में शिवरात्रि का यह पर्व बहुत धूम–धाम के साथ मनाया गया था। साधिका को गुरुदेव के स्थूल दर्शन उसके बाद नहीं हो सके। वह दिन–तिथि हर पल मन में बहुत कुछ यादें, फरयादें संजोय हुए है। अतः १४ फरवरी, १९९९, तिथि शिवरात्रि को गुरुदेव के चरणार्विन्दों में साक्षात दर्शन के नौ वर्ष पूर्ण होने पर उनके पावन–श्री चरण–कमलों में* ***विरह–व्यथित विनय–वाटिका*** *नामक कविता की प्रथम भेंट।*

कृपा निधान परम पूज्य श्री सद्‌गुरुदेव

डा. स्वामी केशवाचार्य, चान्दोद (बड़ौदा)

जीवों की किंकर्तव्यविमूढ़ता को देखकर अखिल लोक नायक जगन्नियन्ता पारब्रह्म परमेश्वर श्री दयासिन्धु श्री भगवान के मन में दया की लहरें उमड़ पड़ती हैं। और दयालु श्री भगवान जीवों को संसार सागर से उद्धार करना चाहते हैं। साथ ही साथ उचित अवसर की भी प्रतीक्षा भी करते हैं। वह इसलिए कि अपने ऊपर कोई दोषारोपण न करे। यदि भगवान जीवों के कर्मों को निमित्त न मानकर एकाएक किसी जीव पर कृपा करे तो भगवान में वैषम्य और नैर्घृण्य दोष लग जावेंगे। क्योंकि श्री भगवान किसी पर कृपा करें और किसी पर कृपा न करें तो वैषम्य दोष लगना स्वाभाविक है। और यदि जिन पर दया नहीं करते उनके प्रति नैर्घृण्य दोष अर्थात् निर्दय बन जावेंगे।

अतः श्री भगवान उन पुण्य कर्मों को निमित्त बनाकर जीवों के प्रति कृपा करने के लिए उत्सुक रहते हैं जो किसी न किसी प्रकार जीवों के द्वारा बन गये हों। इस प्रकार दोषों से बचकर जीवों के प्रति कृपा करना शास्त्र सिद्ध स्वभाव है। इस से सिद्ध होता है कि अब तक जीवों के द्वारा वैसे सुकर्म नहीं बन पाये जिससे श्री भगवान भी कृपा नहीं कर पाये। भगवान के साथ जो जीव का सम्बन्ध है वह किसी कारण से नहीं अपितु स्वभाव से है।

अतएव कहा गया है कि **सुहृदं सर्वभूतानाम्** भगवान से विमुख जीव भले ही इस सम्बन्ध को भूल जावे, किन्तु सर्वान्तरात्मा भगवान कभी नहीं भूलते अपितु सभी जीवों के प्रति सौहार्द रखते हैं। इसी सौहार्द के कारण जीवों के द्वारा अज्ञात– यादृच्छिक, आनुषङ्गिक, प्रासङ्गिक और सामान्य बुद्धिमूलक आदि सुकृत बनने लगते हैं। इन कर्मों को श्री भगवान अपने सहज सौहार्द के कारण पुण्यकर्म मानकर जीवों पर विशेष रूप से कृपा कटाक्ष करते हैं जिससे उनका उद्धार हो जाता है।

१– जिन कर्मों को जीव बिना समझे बूझे (ये सत्कर्म है ऐसा न मानकर) कर डालता है वे अज्ञात सुकृत कहलाते है।

२– जिन्हें मनुष्य समझता है कि ये सुकृत हैं किन्तु करते समय यह ध्यान नहीं रखता कि मैं ये उत्तम सुकृत कर रहा हूँ और अकस्मात कर डालता है वे यादृच्छित सुकृत कहे जाते हैं।

३– अनुषङ्गित सुकृत उन्हें कहते जो गौण होते है– जैसे– **''ग्रामं गच्छन् तृणं स्पर्शति''**। यहाँ पर ग्राम का जाना मुख्य और तृणस्पर्श गौण है।

४– प्रासंगिक सुकृत वे कहलाते हैं जो कार्य करते हुए अनायास सिद्ध हो जावें जैसे– **आम्राश्च सिक्ता: पितरश्च तृप्ता:।**

५– सामान्य बुद्धि मूलक सुकृत वे कहलाते हैं कि जिन कर्मों की महिमा को पूर्ण रीति से न जानते हुए भी केवल इतना ही समझ कर करता है कि ये अच्छे कर्म हैं जैसे– तीर्थ यात्रादि।

दया सागर श्री भगवान अपने सहज सौहार्द के कारण उक्त कामों को सुकृत मानकर जीवों पर कृपा कटाक्ष करते हुए इस धरा पर किसी न किसी रूप में अवतीर्ण होते ही है जैसे– श्री राम, श्री कृष्ण, श्री दत्तात्रेय, श्री शुक देव, श्री व्यास, श्री आद्य शंकराचार्य, श्री दुर्गा, श्री काली, श्री भवानी इत्यादि– इसी क्रम में इसी धरा पर विश्व वन्द्य परम प्रभु परमात्मा साक्षात् अनन्त श्री महाप्रभु जी के रूप में अवतीर्ण हुए। जैसे– श्री राम ने या श्री कृष्ण ने

अपने इच्छानुसार अपनी लीला भूमि का चयन कर जगत में लीला करते हुए जीवों का उद्धार किया ठीक उसी प्रकार उसी क्रम में विश्व वन्द्य श्री महाप्रभु जी ने लीला भूमि का चयन किया। जो आगरा एवं टूण्डला के मध्य श्री सिद्ध गुफा सवाँई धाम के नाम से सुप्रसिद्ध है। श्री महाप्रभु जी श्री सिद्ध गुफा में विराजित रहकर यहीं से सम्पूर्ण विश्व को मौन, आत्मिक, कल्याणात्मक सदुपदेश देते रहे हैं। और वर्तमान में भी हिमालय में विराजमान रह कर सम्पूर्ण विश्व को कल्याणात्मक सदुउपदेश दे रहे हैं। पार ब्रह्म परमेश्वर अखिल ब्रह्माण्ड नायक महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज ही मेरे परमाराध्य देव योगयोगेश्वर योगिराज सर्वान्तरात्मा श्री चन्द्र मोहन जी महाराज बनकर हम जैसे पतितों के पावनार्थ पुन: इसी धरा पर प्रकट होकर दर्शन दिये। परमात्मा का दर्शन तो किसी सन्त के रूप में ही सुलभ हो पाता है। सन्त का सद्गुरू का संग प्राप्त होना दुर्लभ तथा अगम्य बतलाया गया है। सन्त की प्राप्ति होना भगवान की ही प्राप्ति होना है। और भगवान की प्राप्ति दुर्लभ तथा अगम्य है। यह बात सीधी समझ में आती है। अत: सन्त की प्राप्ति भी दुर्लभ तथा अगम्य है।

" महत्संगस्तु दुर्लभ:"॥ "स महात्मा सुदुर्लभ:"॥

संसार में सब महात्मा या सन्त नहीं होते। महात्मा थोड़े होते हैं। अधिक लोग सांसारिक विषयों में आसक्त ही हैं। अत: महात्मा का मिलना कठिन है। सन्त का मिलना कठिन है। यदि कहीं मिलते भी है तो "अगम्य:"– उनको पहचानना कठिन होता है। वे ऐसे–ऐसे ढंग से रहते है कि मनुष्य भ्रम में पड़ जाता है।

"क्वच्छिष्ठा: क्वचिद् भ्रष्टा: क्वचिद् भूत पिशाचवत्।
नाना रूप धरा: कौला विचरन्ति महीतले॥"

कहीं सभ्य–शिष्ट रूप में, कहीं अपने को आचार भ्रष्ट दिखलाते हुए, कहीं भूत प्रेत के समान उन्मत्त बने इस प्रकार नाना प्रकार का रूप धारण कर परमात्मा इस पृथ्वी पर विचरण करते रहते हैं। इसी तरह इसी क्रम में परम पिता परमात्मा श्री महाप्रभु जी के रूप में, श्री महाप्रभु जी ही हम सबों के प्राणाधार श्री सद्गुरूदेव के रूप में हम सबों को दर्शन देते रहे हैं। **"लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव"**॥ ना. भ. सूत्र ४० श्री सद्गुरूदेव जी के दर्शन स्वयं उन्हीं की कृपा से सम्भव है। **"तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्**। क्योंकि श्री भगवान में और श्री गुरूदेव में किसी भी प्रकार का कोई भेद नहीं है।

अभी कुछ ही दिन पूर्व एक संयोग घटित हुआ मेरे साथ जो कि अपने आप में एक अविस्मरणीय क्षण है। उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी की तरफ से एक त्रिदिवसीय विराट संस्कृत सम्मेलन नागरी नाटक मण्डली वाराणसी में आयोजित किया गया। जिसमें सुदूर प्रान्तों के भी संस्कृत मनीषी आमन्त्रित किये गये। जिसमें मुझे भी आमन्त्रित किया गया। त्रिदिवसीय सम्मेलन में एक दिन शास्त्रार्थ सम्मेलन रखा गया था। जिसमें विषय था कि **"वेदों में अवतार वाद का वर्णन क्यों नहीं किया गया है।"** शास्त्रार्थ होने के एक दिन पूर्व ही यह विषय समस्त विद्वानों को अवगत करा दिया गया था। विधिवत एक परचे पर लिखकर सबको दिया गया। मुझे भी दिया गया। मैंने जहाँ तक वेदों का अध्ययन किया था उसके आधार पर रात्रि में विश्राम कक्ष में चिन्तन प्रारम्भ किया। कुछ ज्यादा ही चिन्तन का विषय था। क्योंकि कुछ क्षण भारत के महामनीषियों का भी आगमन हुआ था। और यह शास्त्रार्थ सम्मेलन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व विद्यालय में आचार्य कक्षा के भूतपूर्व व्याकरण विभागाध्यक्ष एवं काशी विद्वत परिषद के परमाध्यक्ष विश्व विश्रुत विद्वान पं. श्रीराम प्रसाद त्रिपाठी जी की

अध्यक्षता में सम्पन्न होनी थी। जिस सम्मेलन के प्रधान निर्णायक श्रृंगेरी पीठ के शंकराचार्य श्री स्वामी भारती तीर्थ जी महाराज थे। देर रात्रि तक निन्द्रा का आगमन नहीं हो पा रहा था। मन मन्थन चल रहा था कि यदि कल विराट शास्त्रार्थ सम्मेलन में यथानुकूल उत्तर न मैं दे सका तो विद्वानों द्वारा प्रदत्त वैदुष्य एवं श्री योग योगेश्वर लीला लीन श्री सद्गुरुदेव जी द्वारा प्रदत्त शुभाशीर्वाद में सन्देहास्पद भूमिका परिलक्षित होगी।

एतदर्थ मन: मन्थन कुछ अधिक ही हो रहा था कि थोड़ी ही देर में नित्य लीलालीन योग योगेश्वर भगवान श्री सद् गुरुदेव (जो मेरे माता जी और पिताजी भी हैं।) जी का सशरीर आगमन हुआ। मैं अचानक दर्शन से चकित रह गया और तत्काल उठकर साष्टांगप्रणाम किया। और श्री सद्गुरुदेव आसन पर विराजमान हो गये। और मुझे देखने लगे। मुझसे बोले कि "लला चिन्ता मत करो कल होने वाले शास्त्रार्थ में तुम्हारे अन्दर बैठ कर मैं बोलूंगा, साथ ही शास्त्रार्थ विजयी करूँगा"। मैंने निवेदन किया कि प्रभु बड़े–बड़े घटाटोप संस्कृत मनीषी वेदत्त लोग पधारे हैं। निर्णायक दक्षिण भारत के शंकराचार्य हैं। ऐसी स्थिति में क्या होगा ? क्योंकि मैं अत्यल्प हूँ। पूज्य श्री सद्गुरुदेव जी ने बड़ी ही प्यारी बात कही कि "लला तुम मेरे बेटे हो तुम अपनी चिन्ता मेरे ऊपर छोड़ दो, कल के विराट शास्त्रार्थ में केवल तुम ही रहोगे विजयी। और तुम्हारे अन्दर से मैं बोलूँगा। तुम निश्चिन्त रहो। मुझे जाने दो। अब आज रात्रि में तुम पूर्ण विश्राम करो। कल मैं आऊँगा।" बस इतना ही कह कर मेरे प्राणाधार आसन से उठकर प्रस्थान कर गये। कहाँ गये मुझे पता नहीं। मुझे कितनी जल्दी निन्द्रा आयी मुझे पता ही न चला। प्रात: काल विराट सम्मेलन के अन्तिम दिन पुन: विगत दिनों की भाँति सभा लगी। उस दिन की सभा में एक अलौकिक छटा, दिव्य शोभा सी दीख रही थी। शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। विषय पूर्वोल्लिखित ही था। बहुत देर तक अन्यान्य मनीषी बोलते रहे। मेरा नम्बर कुछ विद्वानों के बाद में था। मैं अपने नम्बर की प्रतीक्षा में था। कुछ ही समय बाद जब मेरा नम्बर आया तो मुझे ऐसा लगा कि मैं इस शास्त्रार्थ सभा में सकलवाद वृन्दोऽपरिविराजमान हो गया हूँ। पैंतिस मिनट तक मैं बोलता ही रहा। मुझे कुछ पता ही न चला कि मैं क्या बोल गया। सम्पूर्ण सभा में तालियों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ी। निर्णायक मण्डल के परमाध्यक्ष वरिष्ठ शंकराचार्य श्री स्वामी भारती तीर्थ जी ने सभा मध्य वरीयता के क्रम में सर्व प्रथम मेरे नाम की उद्घोषणा कर प्रथम पुरस्कार में भगवान शंकर जी की एक स्वर्ण प्रतिमा, रजत शाल थाली में मानक प्रशस्ति पत्र एवं दस हजार रुपया प्रदान किया। सभाध्यक्ष एवं शंकराचार्य जी सहित कुछ विद्वान आश्चर्यचकित हो गये कि डॉ. स्वामी केशवाचार्य इतने कठिन विषय को कैसे सरल करते हुए शास्त्रार्थ विजयी हो गये। क्योंकि काशी के उस सभा मण्डप में वरेण्य विद्वत गुरुजन भी थे। जिन गुरुजनों ने मुझे पढ़ाया भी था। अस्तु। यह महाकृपा तो उन प्राणाधार जगदात्मा परमपिता श्री सद्गुरुदेव जी की ही तो थी। जो काशी के घटाटोप भयंकराचार्यों को भी चकित करके सकलवाद वृन्दोऽपरिविराजमान करके विजयी घोषित किया।

[illegible]र्थ हम अपने गुरु को केवल श्री सद्गुरुदेव की ही संज्ञा न देते हुए साक्षात् जगन्नियन्ता जगदोद्धारक नाराय[illegible] ही संज्ञा देते। और मैं क्या संज्ञा दे सकता हूँ। मैं तो अकिंच्चन हूँ। वो तो साक्षात् नारायण थे ही। जिन्होंने हम जैसे अनाथ को भी सनाथ कर दिया।

योग योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ही योग योगेश्वर श्री भगवान महाप्रभु जी के रूप में दर्शन देते है योग योगेश्वर भगवान श्री महाप्रभु जी ही योग योगेश्वर सद्गुरुदेव के रूप में दर्शन देते हैं। अनेकानेक युगों से

जिनकी कृपा बरसती चली आ रही है और दिग्दिगन्त तक बरसती ही रहेगी। आज राष्ट्र के जनमानस को इस कोलाहल पूर्ण वातावरण से बचाने के लिए एक मात्र उपाय है श्री सद्गुरूदेव जी के चरणों में अपने आपको समर्पित कर देने की। क्योंकि आत्म समर्पण भी एक पूर्ण भक्ति योग है। और योग योगेश्वर श्री सद्गुरूदेव जी के चरणों में आत्म समर्पण करना यह अत्यन्त सौभाग्य परक है। आत्म समर्पणोपरान्त इस राष्ट्र का प्राणी कभी भी दुःखी नहीं रह सकता है। क्योंकि श्री सद्गुरूदेव जी का वचन है कि "लला जिसने अपने आपको मुझे समर्पित कर दिया है उसकी सारी जिम्मेदारी मेरी हो जाती है। फिर मैं उस पर कृपा करते हुए उस आत्म समर्पित जीव का पूर्ण कल्याण कर देता हूँ"। यथा–

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ गी. ९/२२

योग योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! जो अनन्य चित्त भाव से भी मेरा ही भजन करता है, उसे हम योग और क्षेम का वहन करते हैं। इसी प्रकार मेरे श्री सद्गुरूदेव जी भी योग क्षेम का वहन करते हैं। केवल श्रद्धा विश्वास के साथ आत्म समर्पण की ही आवश्यकता है। श्री सद्गुरूदेव तो परमकृपालु हैं। मेरे ऊपर तो न जाने कितनी बार अनायास अहैतुकी कृपा की है जिसका मैं पूर्ण वर्णन नहीं कर सकता हूँ। यह जीवन तो उन्हीं का है। सुनहु तात यह अकथ कहानी।
समुझत बनई न जाई बखानी॥ रा.च. मा. दो. ११६ ख चौ. १–

उन अहैतुकी कृपाओं का मैं तो वर्णन नहीं कर सकता हूँ क्योंकि अवर्णनीय है। केवल अनुभव गम्य है। श्रीगुरूदेव जी मेरे पूर्ण प्राणाधार मेरे इष्ट हैं। जिनके विषय में कुछ भी कह पाना या लिख पाना असम्भव सा प्रतीत ही नहीं होता है अपितु पूर्ण रुपेण कठिन सा है। क्योंकि सद्गुरू ही शिव है और शिव ही सद्गुरू है। और सद्गुरूदेव का वर्णन कहा तक किया जा सकता है।

असितगिरि समस्यातकज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरूवरशाखा लेखनी पत्र मुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व कालम्,
तदपितव गुणानामीश पारं न याति॥

३२॥ श्री शिव महिमा स्तोत्रम्।

हे गुरू–ईश! असित् अर्थात् काले पर्वत के समान कज्जल (स्याही) समुद्र पात्र में हो, सुरवर (कल्पवृक्ष) के शाखा की उत्तम लेखिनी हो और पृथ्वी कागज हो उन साधनों को लेकर स्वयं शारदा सर्वदा ही लिखती रहे तथापि आपके गुणों का बखान नहीं कर सकती। तो मैं क्या बखान कर सकता हूँ। हाँ यह सत्य ही नहीं अपितु महान ध्रुव सत्य है कि मेरे श्री सद्गुरूदेव जी के समान कृपालु नहीं कोई है।

"को कृपालु सद्गुरू सरिख"

वो तो करुणा निधान है। आवश्यकता है मुझ में करुणा आने की। सद्गुरू तो कल्याण कर ही देते हैं। जैसे सीताजी ने करुणा की, ध्रुव ने करुणा की, गज ने करुणा की, सबों का कल्याण हुआ। प्रातः स्मरणीय योग योगेश्वर श्री माहप्रभु जी ने तद्रुप नित्य लीलालीन करुणा का कल्याण किया है, कर रहे हैं, और करते रहेंगे। इन्हीं आशा एवं विश्वास के साथ गुरुदेव के चरणों में प्रणाम स्वीकृत हो। * * *

अद्भुत अहैतुकी कृपा

(केशव देव उपाध्याय)

प्रस्तुत कृपा प्रसंग योग योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के विशेष कृपापात्र शिष्य तत्व विजयी अमर सिद्ध योगीराज श्री हरिहरानन्द जी महाराज के गृह जनपद बलिया जिले से संबंधित है। इस विवरण को श्रद्धासहित अश्रुपूरित नेत्रों तथा आह्लादित मन से सादर सविस्तार सुनाने वाले श्री विजय शंकर उपाध्याय जी हमारे आदरणीय गुरुभाई एवं चि० राजेश कुमार तिवारी (जिसके साथ यह घटना घटित हुयी है।) के सगे मामा हैं तथा इनके घर में आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान एवं महाप्रभु जी का विधिवत् आरती–पूजन बीसियों वर्ष से ज्यादा समय से खूब आनन्द एवं उत्साह के साथ होता आ रहा है। इस घटना को श्री उपाध्याय जी के शब्दों में ही लिपिबद्ध करना समीचीन होगा।

यह घटना हमारी सहोदर बहन की है। अतः उसके प्रारंभिक जीवन का संक्षेप में संकेत देना अप्रासंगिक न होगा। हम अपने पिता की तीन सन्तानें थीं। पहली माँ से हमारे बड़े भाई जिनका आज से कुछ वर्ष पूर्व शरीर छूट चुका है और दूसरी माँ से मैं और मेरी छोटी बहन कमलादेवी। जिसके साथ श्री महाप्रभु जी की अमोघ कृपा ही इस कथा का मुख्य अंश है। हमारे पिताजी अपने समय के जिले के अच्छे पहलवानों में से थे। अवस्था गिरने पर उनका झुकाव ईश्वर भक्ति की ओर अधिक हो गया। इस रूझान का कारण भी एक अपरिचित योगी की कृपा ही रही, जिसका उल्लेख करना यहाँ उचित न होगा। समय चक्र के साथ ही पिताजी का भगवान श्रीराम में प्रेम प्रगाढ़ होता गया। उनकी वृद्धावस्था में तो भगवान श्रीराम का नाम लेते ही उनके नेत्र अश्रुपूरित हो जाया करते थे। तत्कालीन प्रथानुसार हमारी छोटी बहन कमलादेवी का विवाह संस्कार अल्पायु में ही अपने गाँव से करीब तीन मील की दूरी पर एक धनीमानी किसान के ज्येष्ठ पुत्र श्री तेज बहादुर तिवारी के साथ सम्पन्न हुआ। अत्याधिक लाड़ प्यार और प्रथम पुत्र होने के कारण इनकी संगति समाज में अवांछनीय बालकों से हो गयी। इसके फलस्वरूप आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व एक अपराध में श्री तिवारी जी को आजीवन कारावास की कैद हो गई। यह सजा सुप्रीम कोर्ट से भी बरकरार रही। सजा प्राप्ति के कुछ वर्ष पश्चात् हमारी बहन की प्रार्थना और नेताओं के आग्रह अनुरोध पर सरकार ने प्रत्येक वर्ष दो माह के पैरोल पर छुट्टी देना स्वीकार कर लिया।

इस समय इनके दो पुत्र एवं एक लड़की है। चूंकि श्री तिवारी जी का व्यवहार बहुत कम लोगों से अच्छा और अत्यधिक लोगों से खराब था अतः समाज के ज्यादा लोग उन्हें अपना शत्रु और इनके परिवार को अपना अहितैषी समझने लगे। अपने पतिदेव के जेल चले जाने के बाद कमलादेवी ने महामाया श्री दुर्गा जी की पूजा–आरती विधिवत करना आरम्भ कर दिया। संस्कार कुछ ऐसा रहा कि हमारी बहन और उसकी सास का व्यवहार बिल्कुल ही ठीक नहीं रहता था। परिवार के और सदस्यों (देवर, ननद और छोटी बहुओं) से हमारी बहन कमलादेवी का व्यवहार पहले तो बड़ा मधुर था, परन्तु पतिदेव के जेल चले जाने के बाद परिवार के सभी सदस्यों ने अपना व्यवहार बदलकर खराब कर लिया। यह सब कमलादेवी को हेय दृष्टि से देखने

लगे और अनके प्रकार से उसे ताना मारने लगे।

कमला देवी के प्रथम पुत्र का नाम राजेश कुमार तिवारी है। वह उन्नीस मार्च उन्नीस सौ बयासी को अचानक लापता हो गया। उस समय उसकी अवस्था चौदह वर्ष की थी। वह काफी स्वस्थ और मजबूत शरीर का बालक था। मार्च १९८२ शुक्रवार दिन ग्यारह बजे मेरी बहन का यह लड़का राजेश खेत पर घूमने गया था, पर वहाँ से अचानक लापता हो गया। इधर उधर एक सप्ताह तक रिश्तेदारी आदि स्थानों पर खोज की गयी, लेकिन कहीं भी कुछ पता न लग सका। विवश होकर 'हारे पर बलराम' मैंने दिनांक २७–३–८२ को श्री गुरूदेव जी को प्रार्थना पत्र दिया और उनका कृपात्मक आशीर्वाद पत्र मुझे अप्रैल १९८२ को प्राप्त हुआ। पत्र में श्री प्रभु जी का आर्शीवाद था, "लल्ला वह वापस आ जावेगा, घबड़ाने की कोई बात नहीं है। न ज्यादे परेशानी में पड़ना है, वह अवश्य ही सकुशल लौट कर वापस आवेगा।

पत्र पढ़कर इतनी शान्ति मिली कि मानों राजेश कुमार घर आ गया हो। अपने प्रथम पुत्र केशव को जो प्रभु चरणों में आश्रय प्राप्त है तथा इस समय काशी में कार्यरत है, जब मैंने श्री प्रभु जी का आर्शीवादात्मक पत्र दिखाया तो उसने उस पत्र को पढ़ने के बाद बड़े ही धैर्य एवं विश्वास से कहा कि पिताजी। प्रभु कृपा से अब उसे आना ही है। समय कुछ कम–ज्यादा हो सकता है, आप बुआ जी को किसी प्रकार समझाने की कृपा करें। चूंकि इसके पूर्व हमारे अपने परिवार पर प्रभु कृपा से कई अद्भुत घटनाएँ घट चुकी हैं, अतः मुझे भी राजेश कुमार की वापसी का पूर्ण विश्वास हो गया। मैंने बहन कमलादेवी को जो पति वियोग एवं विशेष रूप से पुत्र वियोग से रात दिन रोती रहती थी, अनेक प्रकार से समझाने का प्रयास किया एवं उसको भी श्री प्रभु जी को पत्र लिखने एवं प्रार्थना करने को कहा। प्रभु जी के पास से उसे भी वैसा ही कृपा पत्र मिला जैसा मेरे पास आया था।

श्री गुरूदेव भगवान के काशी प्रवास के समय श्रीमती कमलादेवी ने मेरे साथ २९, ३०, ३१ दिसम्बर व पहली जनवरी १९८३ को प्रभु जी का चरण कमल स्पर्श किया और एक बार पुनः स्पष्ट रूप से श्री चरणों में अपनी विपत्ति की प्रार्थना की। श्री प्रभु जी ने कहा कि दाढ़ी वाले महाप्रभु जी का स्मरण एवं चिन्तन करो, वही तुम्हारे सब कष्ट दूर कर देंगे। इसके पूर्व कमलादेवी ने गुरू पूर्णिमा के पावन पर्व पर प्रभु जी के चरणों का स्पर्श किया था एवं महासिद्ध पीठ श्री सिद्ध गुफा संवाई के दर्शन का लाभ उठाया था। पावन गुरू पूर्णिमा का पर्व समाप्त होने पर आते समय कमला देवी ने किसी गुरू भाई के सिखलाने पर श्री चरणों में प्रार्थना की कि प्रभुजी वह (राजेश) महाप्रभु जी की जयन्ती चैत्र नवमी के पूर्व ही आ जाय। श्री गुरूदेव भगवान ने, सिखलाने वाले मेरे गुरू भाई की तरफ तिरछी चितवन से देखकर मुस्कराते हुए अत्यधिक प्रेम एवं आह्लाद भरे शब्दों में कहा– लल्ली! प्रभु जी के चरण कमलों का चिन्तन एवं स्मरण तथा आरती पूजन किया करो। वह अवश्य ही आ जायेगा।

इसके बाद गुरूदेव ने रज प्रसाद देकर प्रेम भरे शब्दों में जाने की आज्ञा प्रदान की एवं बहन वापस घर आकर प्रभु का बराबर श्रद्धामय चिंतन करने लगी। इसके बाद काशी में तथा पत्र द्वारा श्री गुरूदेव ने कमलादेवी को रज तथा पुष्प प्रसाद प्रदान करने की भी कृपा की थी। घर लौटने पर उसकी व्याकुलता एवं अधीरता

देखकर मेरे पुत्र केशव ने किताब से निकाल कर श्री प्रभु जी एवं महाप्रभु जी का स्वरूप उसे दिया एवं प्रार्थना की कि इसे मढ़वाकर इन्हीं दोनों महाशक्तियों का आरती–पूजन किया करो, इन्हीं का इनके सामने बैठकर जाप किया करो, इन्हीं से अपना दुःख दर्द कहो और इन्हीं के सामने रोना सार्थक समझो। आप लोगों से ही जो कुछ कहना हो कहो, हम लोग कर ही क्या सकते हैं। वैसे प्रभु जी ने जब कह ही दिया है तो राजेश अवश्य ही वापस आ जायेगा।

महामाया दुर्गा उपासक बहन को पहले तो डर लगा कि कहीं दुर्गा जी नाराज होकर अपकार न करने लगें, परन्तु समझाने पर आस्था दृढ़ करके उसने इन महाशक्तियों का विधिवत आरती पूजन आरम्भ कर दिया।

असहाय एवं निराश्रित बहन को स्वरूप का बहुत बड़ा सहारा मिल गया। परिवार की अन्य स्त्रियाँ इस पुत्र वियोग की लम्बी अवधि में बड़े कटु ताना मारती रहती कि आज तक दुर्गा पूजती रही और अब एक साधु और उसके गुरू दाढ़ी वाले को पूज रही है, देखें वे लड़का कहाँ से खोजकर लाते हैं। लड़का तो गायब होने के तीसरे दिन ही मार डाला गया। क्योंकि हमारे ज्योतिषी झूठ नहीं बोलते हैं और उन्होंने कहा है कि राजेश कुमार तीसरे दिन ही जान से मार डाला गया है।

इस प्रकार समय व्यतीत होता गया और कमला देवी का कष्ट अविचल पहाड़ की तरह स्थिर रहा। कमलादेवी का समय प्रभु जी एवं महाप्रभु जी की आरती, पूजन एवं चिन्तन में ही गुजरता था और उसे अनेक दिव्य अनुभूतियाँ होती रहती थी। श्री गुरू देव जी एवं महाप्रभु जी की आरती, पूजा एवं गुरू भाई बहनों तथा आत्मीय जनों की सांत्वना ही कमला देवी के जीवन का सहारा बन गयी थी।

धन्य हो, हे प्रभु जी! ठीक एक वर्ष, एक माह पर श्री महाप्रभु जी की पावन जयन्ती चैत्र रामनवमी के एक दिन पूर्व ही १९ अप्रैल १९८३ मंगलवार को ग्यारह बजे अचानक राजेश कुमार अपने आप सकुशल घर वापस आ गया। उसकी माँ कमला देवी को जब यह खबर मिली कि राजेश दरवाजे पर आ गया है, तो पहले तो वह श्री प्रभु जी की कृपा पर बार–बार पुलकित होती रही तथा रोती रही, बाद में स्वरूप के सामने बैठकर कुछ देर तक अचेतावस्था (ध्यान) में पड़ी रही। राजेश कुमार के सकुशल वापस घर आने की बात पर उसे देखने और उसको सुनने के लिए करीब–करीब दो सौ नर–नारी, बालक एवं वृद्ध दरवाजे पर एकत्र हो गये।

अपनी अचेतावस्था समाप्त होने पर कमला देवी ने कई बार राजेश को बुलाने के लिए दरवाजे पर समाचार भेजा। अधिक क्या कहा जाय कमलादेवी का मन इतना प्रसन्न था कि वह बार–बार रोमांचित हो जाया करती थी। इसके पश्चात अन्य परिवारीजनों से मिलने के बाद कमलादेवी राजेश को अपने साथ उस कमरे में ले गई जहाँ श्री प्रभु जी एवं श्री महा प्रभु जी का स्वरूप आरती–पूजन के लिए विराजमान था। इसके पूर्व राजेश कुमार ने इन, दोनों स्वरूपों का कभी भी अवलोकन नहीं किया था। कमला देवी ने दोनों स्वरूपों को स्वयं भी प्रणाम किया एवं राजेश को भी प्रणाम करने की आज्ञा दी। प्रणाम करने के बाद जब राजेश उठा तो उसने दोनों स्वरूपों को देखा। देखने के पश्चात् महाप्रभु जी के स्वरूप की तरफ इशारा करते

हुए कहा कि– माँ जी! दाढ़ी वाले बाबा का यह फोटो तुम्हें कहाँ से मिला है ? इनका बाड़ा (घर) तो बम्बई में है। ये बड़े ही अच्छे आदमी हैं। बराबर हमसे आकर मिलते थे और समझाते थे। हमको कल्यान (बम्बई) से गाड़ी में बिना पैसे के यहाँ लाये हैं। उनका टिकट नहीं लगता है। बम्बई से बनारस लाये, वहाँ से घर ले आ रहे थे, परन्तु बीच में बुआ–फूफा मिल गये तो यह कहकर कि बेटा ! अपने बुआ–फूफा को पहचान लो और इनके साथ अपने घर चले जाओ। वे वहीं से अन्तर्ध्यान हो गये, परन्तु उनकी आवाज स्पष्ट सुनायी पड़ती थी कि बेटा! तुम जाओ और अब मैं भी जा रहा हूँ।

हमारी बहन ने समझाया कि नहीं बेटा! इन्होंने तो अपना शरीर बहुत पहले छोड़ दिया है। वो दाढ़ी वाले बाबा नहीं बल्कि ये (गुरुदेव भगवान) होंगे। उसने कहा कि नहीं माँ नहीं, ये कई दिन हमारे साथ रहे हैं। यही हमारे दाढ़ी वाले बाबा हैं। उसने बतलाया कि जब ये जहाँ चाहते हैं वहीं प्रकट हो जाते हैं। जिसको चाहते है उसी को दिखायी देते हैं। सबके सामने प्रकट होते थे, दिखलाई केवल मुझे ही देते थे और जब हमसे बात करते थे, तब कुछ भी उन सबों को बिल्कुल सुनायी नहीं पड़ता था। आदि अनेक प्रकार से राजेश महाप्रभु जी की महिमा का वर्णन करता रहा।

अपहरण की कहानी राजेश की जुबानी

राजेश तुम घर छोड़कर क्यों भाग गये थे ? मेरा प्रश्न सुनकर उसकी आँखों से अश्रु पात होने लगा। अपने अपहरण की घटना बताते हुए उसने कहा कि मामा जी! उन्नीस मार्च को मैं अपने ट्यूबवेल पर गया और वहाँ से चना का खेत (फसल) देखने चला गया। यह खेत सड़क से करीब एक फलाँग दूर है। जब मैं चने के खेत पर बैठा था तभी दो आदमी मोटर साईकिल से खेत के पास आये। मोटर सायकिल खड़ी करके एक ने हमसे पूछा– बेटा! क्या नाम है, मैंने अपना नाम बतलाया। फिर उसने पिताजी का नाम पूछा, मैंने बतलाया तेज बहादुर तिवारी। इसके बाद उसने कहा कि बेटा! इधर आओ कुछ काम है। जब हम उनके पास गये तो उन्होंने हम को पकड़ लिया। एक ने मोटर सायकिल पर बैठकर उसे स्टार्ट किया और दूसरा जबरदस्ती हमें उस पर बैठाने लगा। मैंने जब आना–कानी की और भागने का प्रयत्न किया तो दूसरे वाले ने एक पिस्तौल मेरी छाती से लगा दिया और कहा कि अब यदि एक शब्द भी तू बोला तो गोली मार दूँगा।

इसके बाद हमें दूसरे जिले में ले गये और वहाँ से करीब पाँच दिन बाद कल्यान गाड़ी (ट्रेन) द्वारा ले गये। रास्ते में मुझे कुछ भी कहने की मनाही थी। वहाँ जाने के कुछ दिन बाद मेरे शरीर पर कुछ लगा देते थे, जिससे मक्खियाँ लगी थी और तब चौराहे पर बैठाकर भिक्षा मंगवाते थे। इसके बाद समुद्र के किनारे मिट्टी भरवाने का काम कराते थे। रात को हाथ पैर बांधकर रखते थे और सुबह से शाम तक काम कराते थे। सुबह केवल एक चाय और शाम को छोटी–छोटी चार रोटियाँ खाने को देते थे। पेट हरदम भूखा रहता था। जब थककर गिर जाता था तो सब डण्डा से मारते थे और कहते कि खाना इतना खाते हो साले और काम करने में नकल कछाते हो। एक दिन हमने पन्द्रह पैसा का एक पोस्टकार्ड आपके पास पत्र लिखने के लिए मांगा तो बोला–साले अभी तुम्हें मामा, माँ और बहन याद आती ही रहती है। इसके बाद उसने मुझे दो चाँटा जोर

से मारा और मैं गिर कर बेहोश हो गया। कुछ देर बाद मुझे होश आया और मैं फिर उठकर काम करने लगा। केवल अभी मैं और एक लड़का और था जिसका कोई नुकसान नहीं हुआ था, नहीं तो किसी का पैर तोड़ देते थे, किसी की एक आँख फोड़ देते थे या किसी का एक हाथ तोड़ देते थे। सबको ऐसा कर देते थे कि उनको कोई पहचान न सके।

श्री महाप्रभु दर्शन एवं कष्ट निवारण

राजेश कुमार ने आगे बतलाया कि मामा जी जिस दिन आपके यहाँ चिट्ठी लिखने के लिए हमने पैसा या पोस्टकार्ड इनसे माँगा और तब हमें पीटा गया व हम बेहोश होकर गिर पड़े। इसके बाद हमें पता नहीं कितनी देर बाद बाबा जी ने बाँह पकड़कर उठाया और कहा कि क्या बात है बेटा! क्यों रो रहे हो और क्यों इतना कमजोर हो गये हो। हमने अपनी सब बात उनको बतला दी। हमने यह भी बतलाया कि दिन भर बिना आराम के काम करना पड़ता है। सुबह के चाय और शाम को केवल चार रोटी मिलती है। बाबा जी ने हमारे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा कि बेटा! घबराओ नहीं सब ठीक हो जायेगा और मैं तुम्हें तुम्हारी माँ के पास ले चलूँगा।

इसके बाद बाबा जी ने वहीं की मिट्टी उठाकर दी और कहा कि इसे खा लो, इससे तुम्हें भूख नहीं सतायेगी और तुम अपने को महान बलशाली अनुभव करोगे। राजेश ने आगे बतलाया कि उसे खाते ही ऐसा लगा कि मैंने बहुत खाना खा लिया है और तुरंत ही शरीर मजबूत हो गया। इसके बाद बाबा जी यह कह कर अन्तर्ध्यान हो गये कि बेटा! जब तुम्हें आवश्यकता हो हमें याद करना, हम आ जायेंगे। उसने कहा कि आश्चर्य तो यह था कि तीन आदमी हमें घेरे हुए थे परन्तु बाबा जी को न तो किसी ने देखा और न हम लोगों की बात ही उन सबों को सुनाई देती थी। जब कि हम लोग करीब आधे घण्टे तक बातचीत करते रहे। इसके बाद जब–जब हमने याद किया तब –तब बाबा जी हमसे मिले। अपनी चौथी मुलाकात में बाबा जी ने हमें आदेश दिया कि कोई तुमसे पूछे कि तुम्हें कुछ याद आ रहा है तो कहना कि हम अपने मामा, माँ, पिता आदि सभी परिचितों को भूल गये हैं और अब हमें कुछ भी याद नहीं एवं खूब मेहनत से कार्य किया करो। इसके बाद हमने खूब मेहनत से कार्य किया जिससे वे प्रसन्न होकर प्रेम से बातें करने लगे और उन्हें यह विश्वास हो गया कि अब हम यह स्थान छोड़कर कभी भी अपने घर नहीं जायेंगे। वैसे, सब ने बाबा जी की प्रथम मुलाकात के बाद से ही थोड़ा प्रेम से बात करना आरम्भ कर दिया था। बाबा जी चार बार हमसे मिले, परन्तु मैंने स्पष्ट देखा कि बाबा जी के पैर के नाखून से लेकर सिर तक धवल प्रकाश की किरणें निकल रही हैं।

बाबा जी पाँचवीं बार मुझसे रात में मिले। १६ अप्रैल की तारीख थी। रात के करीब दस बज रहे थे। अपने अन्य सहयोगियों के साथ एक कमरे में बैठकर उन सबों (अपहरण कर्ताओं) के आदेशानुसार फावड़ा व बेलचा की निगरानी कर रहा था। हम पर सामानों की निगरानी का कार्य सौंप कर वे सब हम सभी लोगों का भोजन लेने हेतु गये थे ! अचानक हम लोगों का कमरा अतुलनीय श्वेत और चमकीले प्रकाश से भर

गया। कमरे में चूँकि प्रकाश की कोई व्यवस्था नहीं थी अतः आश्चर्य चकित होकर हमने देखना चाहा कि प्रकाश कहाँ से आ रहा है। हमने देखा कि बाबा जी हमारे सिरहाने खड़े हैं और कमरा उन्हीं के प्रकाश से भरा हुआ है। बाबा जी ने पीठ पर थपथपाया और कहा कि चलो भागो जल्दी करो। आगे—आगे मैं और पीछे—पीछे बाबा जी चल रहे थे। हमारे आगे, दांये, बांये एवं पीछे का रास्ता उनके प्रकाश में ऐसे दिखायी देता था मानो चारों तरफ से टार्च जल रहा हो। आश्चर्य की बात तो यह थी कि बाबा जी के साथ—साथ हमारा भी एक—एक कदम करीब एक—एक फलांग की दूरी पर पड़ता था। यद्यपि मैं चल रहा था परन्तु ऐसा लग रहा था कि मैं कूद—कूद कर दौड़ रहा हूँ। इस प्रकार हम लोग बहुत जल्दी ही बम्बई पहुँच गये। वहाँ पहुचने पर बाबा जी ने एक ट्रेन दिखाकर हमको उसमें बैठने को कहा, परन्तु भीड़ की वजह से हम चढ़ नहीं सके। इसके बाद बाबाजी ने हमारा हाथ पकड़कर हमें एक ऐसे डब्बे में चढ़ाया जिस डब्बे में चढ़ते ही हमें लगा कि बाहर की गर्मी बिल्कुल समाप्त थी। भीतर बड़ी ही ठण्डी, सुखदायक और आरामदायक हवा चल रही थी। गाड़ी में खूब मोटा गद्दा सीट पर बिछा था एवं जमीन पर भी दरी बिछी थी। हमें चढ़ाने के बाद बाबा जी ने ज्यों ही गाड़ी पर पैर रखा, गाड़ी चल दी। उस डिब्बे में एक नवविवाहित पती—पत्नी और एक अन्य आदमी और बैठा था। डिब्बे में चढ़ने के बाद जब मैं फर्श पर नीचे बैठने लगा तो नव विवाहित दम्पत्ति ने हमें बड़े ही वात्सल्य प्रेम से बाँह पकड़कर अपने बगल में बैठाया और अच्छे—अच्छे भोजन कराये तथा भोजन के बाद केला एवं सेब भी खाने को दिये। बनारस पहुँचने पर बाबा जी ने हमें गाड़ी से उतारकर बलिया वाली गाड़ी में बिठाया। बलिया जिला स्टेशन से एक स्टेशन पूर्व ही बाबा जी ने हमें गाड़ी से उतरने को कहा। उतरने पर उन्होंने हमारे बुआ—फूफा को दिखाकर अपने को अन्तर्ध्यान किया। इस प्रकार हम आप लोगों के यहाँ। आ गये। बाबाजी भी पूरी यात्रा में कभी—कभी गायब हो जाते थे एवं जब हम याद करते तो प्रकट हो जाते थे।

पूज्य श्री प्रभु जी (श्री सद्गुरूदेव जी) एवं महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की अपने बालकों पर कृपावेरि—वर्षा की कहानियाँ इतनी अद्भुत और अनोखी है कि जिनका स्मरण मात्र ही शरीर को पुलकित एवं मन को आनन्दित कर देता है। अपनी—अपनी अनूभूति के अनुसार श्री प्रभु जी एवं श्री महाप्रभु जी की कृपापूर्ण गाथाओं के कथानक अलग—अलग हो सकते हैं परन्तु यह सभी से पुष्टि होती है कि सिद्ध गुरू सर्व समर्थ होते हैं और यदि श्रद्धा और विश्वास का अवलम्ब लेकर उनके इंगित मार्ग पर चला जाय तो अलभ्य यहाँ लभ्य हो जाता है। इस तारतम्य और इस तथ्य से अवगत कराना समीचीन है कि श्रीमती कमलादेवी न तो स्वयं एवं न उनके परिवार का कोई भी सदस्य श्री प्रभु चरणों में स्थूल रूप से दीक्षित है। हाँ, यह बात अवश्य ही प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है कि 'जीवन तत्व साधन' की पुस्तक से निकालकर मढ़वाये गये श्री प्रभु जी एवं श्री महाप्रभु जी के स्वरूपों का इनके घर में प्रातः सायं खूब विधि—विधान, उल्लास उत्साह और श्रद्धा भरे हृदय से आरती—पूजन होता है।

* * *

अद्भुत कृपा लीला

राजेश कुमार श्रीवास्तव

ऐत्मादपुर के समीप ग्राम धरेरा में एक २५–३० बीघा भूखण्ड में निहित विशाल तालाब के एक किनारे पर गाँव के लोगों की भीड़ जमा थी। भीड़ के मध्य से किसी का करुण कण्ठ ध्वनित हुआ– ''लगता है किनारे पर ही कोई बालक तालाब की कीचड़ में फंस गया है।'' प्रत्युत्तर में एक वृद्धपुरुष अपनी श्वासों को बटोरता हुआ धीरे–२ फिर बोला– ''हाँ भाई, मैंने कुछ समय पूर्व एक बालक को तालाब के समीप खेलते देखा था। अचानक ही न जाने कैसे तालाब में गिर गया। नहर से कटकर तीव्र वेग से तालाब में उतरता हुआ जल जिस स्थान पर भंवर बनाता है वहीं बालक गिरा है। यद्यपि उस स्थान पर तालाब की गहराई अधिक नहीं हे तथापि भंवर के कारण तथाकथित स्थान पर जल में प्रवेश करना प्राणों को जोखिम में डालने से कम नहीं है। मेरी बूढ़ी देह किसी भी प्रकार इतनी हिम्मत न जुटा सकी कि मैं उस बालक को तुरन्त तालाब के जल से बाहर निकाल पाता।'' भीड़ उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी किन्तु बालक को बचाने का किसी को भी कोई उचित उपाय नहीं सूझ रहा था। जितनी देर हो रही थी उतनी ही बच्चे के जीवित पाने की आशाएँ टूट रहीं थी। भीड़ के व्यर्थ शोरगुल से कुछ अधिक ऊँचे स्वर में एक व्यक्ति की आवाज सुनाई दी– ''अरे भाई ये कैसे पता चले कि यह बच्चा किसका है ? एक अन्य बालक जो जलाधीन बालक से उम्र में थोड़ा बड़ा और समझदार था, काफी देर से सभी लोगों की निष्फल चेष्टाओं को देखकर निरन्तर भयभीत और निराश होता चला जा रहा था। आखिर क्यों नहीं होता ? डूबने वाला लड़का उसका गहरा साथी जो था। दोनों क्रूर तालाब के समीप पशु चराने के बहाने से रोज खेलने आया करते थे। उस डरे–डरे और सहमे सहमे बालक ने उक्त व्यक्ति की ओर मुखरित होकर कहा– ''मैं जानता हूँ उसे, गाँव के मास्टर रूप सिंह जी का लड़का है वह।'' इतना सुनते ही सैकड़ों आँखें उस पर टिक गईं। किसी ने कुछ पूछा तो किसी ने कुछ। किन्तु क्या होना था इन सब बातों से, अब तक काफी देर हो जाने से बच्चे के जीवन की आखिरी उम्मीदें भी तेजी से भाग रहीं थीं। उस लड़के ने बताया कि मैंने अपने छोटे मित्र को तालाब के अति निकट जाने से रोका था किन्तु वह नहीं माना। कैसे मान लेता ? बचपन के दिनों का आनन्द ही कुछ ऐसा होता है। नवीन उमंगों से भरा, वह अति चंचल बालक बचपन की उल्लसित भावनाओं के अधीन होकर, तालाब में प्रवेश करते नहर के जल की, उन्मुक्त उछालों का आनन्द लेने के लिए तालाब के अति निकट पहुंच गया। लकड़ी के डण्डे की सहायता से वह तालाब की दीवार को नाप यह हिसाब लगा रहा था कि जल आज यहाँ तक है, कल यहाँ तक हो जायेगा और परसों.... कि अचानक उसके पैरों के नीचे की भूमि बैठ गई शरीर के असन्तुलित होते ही वह तालाब में डूब गया। लड़के ने बताया कि उसने स्वयं दूर से यह सब देखा। उस लड़के की बात का विश्वास करके मास्टर जी का एक परिचित व्यक्ति तुरन्त उन्हें सूचना देने उनके खेतों की ओर भागा।

आज प्रातः सुबह से ही श्री रूपसिंह मास्टरजी अपने खेतों के आवश्यक कार्यों में निरत थे पूज्य गुरूदेव के चिन्तन में उनका चित्त लगा हुआ था अतः कृषि कार्यों में विशेष आनन्द की अनुभूति हो रही थी। कुछ पुरानी सुख सागर में डुबोने वाली बातों का स्मरण हो आया था। सम्भवतः १९६५–६६ का समय रहा होगा अथवा इससे पूर्व का भी हो सकता है। मास्टरजी धरेरा गाव मे पूज्य श्री गुरूदेव भगवान के एक मात्र थे इसलिए कभी–२ बहुत एकाकीपन महसूस करते थे। ग्रामवासियों को गुरु–शिष्य परम्परा की बातें बिल्कुल नहीं सुहाती थी। उन सभी का कहना था कि गुरू बनाओ फिर उनके लिए भीख मांग कर लाओ यह समाज की दृष्टि में इज्जतदार कार्य नहीं है इस

समय के लोगों की गुरूदीक्षा के प्रति कुछ ऐसी ही धारणा थी। किन्तु संस्कारवश श्री रुपसिंह जी के हृदय में संत महात्माओं के प्रति श्रद्धा थी। वे न तो उनके अधिक समीप जाने की चेष्टा करते थे और न उनकी पूर्ण रुपेण उपेक्षा ही करते थे। फिर भी उनके हृदय के किसी कोने में गुरू बनाने की उत्कृष्ट इच्छा दबी पड़ी थी। जिसका उन्हें स्वयं भी कोई ज्ञान नहीं था। इस बात का बोध उन्हें उस रोज हुआ जब किसी आवश्यक कार्य हेतु वे सँवाई गांव के रास्ते से गुजर रहे थे। परम् प्रभु की कृपा से मास्टर जी के शुभ संस्कारों का उदय हो चला था।

काफी समय की बात हो गई उन दिनों पूज्य गुरूदेव जी श्री सिद्ध गुफा वाले कमरे में ही निवास किया करते थे। इस प्रभु–भवन के अतिरिक्त आश्रम में उस समय तक और कोई किसी प्रकार का विकास नहीं हुआ था। श्री सिद्ध गुफा के पीछे दगरा (कच्चा रास्ता) था जो सीधा सवाई ग्राम को जाता था। दगरे से गुजरने वाले लोग गुफा को बड़ी आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से निहारते हुए निकल जाते थे। कुछ राहगीर जो महाप्रभुजी (योगयोगेश्वर परम् प्रभु श्री रामलाल जी महाराज) की महिमा से परिचित होते थे व श्रद्धा से श्री सिद्ध गुफा को नमन करते और श्री गुरूदेव जी का सम्मान किया करते थे। कुछ राहगीर ऐसे भी हुआ करते थे जो दगरे पर नये होने के कारण श्री सिद्ध गुफा की अद्भुत महिमा से एकदम अपरचित होते थे किन्तु वहाँ से गुजरते ही उनमें प्रभु गुफा के दर्शन की प्रबल जिज्ञासा पैदा हो जाती थी। महाप्रभुजी की महान अनुकम्पा से वे परम् सौभाग्यशाली लोग श्री सिद्ध गुफा का दर्शन लाभ तो लेते ही थे साथ ही परम् करूणानिधि गुरूदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का प्यार दुलार भी पाते थे और उनका परम् कल्याणकारी आर्शीवाद पाकर अपने जीवन को धन्य बनाया करते थे।

श्री सिद्ध गुफा के दर्शनार्थ ऐसे ही प्रबल जिज्ञासु राहगीरों में से एक थे श्री रुपसिंह जी। दगरे की राह से गुजरते हुए एक रोज अचानक उनके हृदय में प्रभु–गुफा के दर्शन हेतु तीव्र तरंगों की संवेदनाएँ होने लगी। जून–जुलाई के दिन थे। सवाँई ग्राम होकर गुजर रहे थे। सिर पर चिलचिलाती धूप की तपन–उस पर प्यास से सूखता कण्ठ उन्हें पैरों को विश्राम देने के लिए विवश कर रहा था। पानी की तलाश करते–करते श्री रुपसिंह के कदम श्री सिद्धगुफा आश्रम तक आ पहुंचे। करूणानिधान श्री गुरूदेव भगवान उस समय प्रभु–गुफा के समीप ही किसी कार्य हेतु खड़े हुए थे। गुरूदेव के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति वहाँ दिखलाई नहीं पड़ा। गुरूदेव को अपनी सामान्यदृष्टि के अन्तर्गत ही रखकर रुपसिंह जी तेज कदमों से उनकी ओर बढ़े और बोले, "राम राम सा (पूर्वी ग्रामीण ब्रज क्षेत्र में यह प्रणाम करने का सम्बोधन है)।" जटाजूट से रहित धोती–कुर्ते के उज्जवल परिधान से सुशोभित, समस्त योग शक्तियों को धारण कर अपने दिव्य तेज से तीनों लोकों को आलोकित करने वाले गुरूदेव को नवीन व्यक्ति, प्रथम दर्शन में उन्हें अपनी अज्ञानता के कारण सामान्य पुरुषों की श्रेणी में ही रखता था। पूर्व परिचय के अभाव में कुछ ऐसी ही दशा रूप सिंह जी की बन पड़ी थी। प्रथम गुरूमिलन जो शिष्टाचारपूर्ण अभिवादन से रहित था, अवश्य कुछ खटकता है। एक तरफ स्वयं परमेश्वर स्वरूप गुरूदेव दूसरी तरफ उनके संस्कारी बालक श्री रुपसिंह जी, जो गुरूदेव के परम ईश्वरीय ऐश्वर्य को समझने में सक्षम नहीं थे। किन्तु गुरूदेव को उनका श्रद्धामय हृदय प्राप्त हो गया था। परमात्मा को भक्त से शिष्टाचार की नहीं अनन्य भक्तिमय विशुद्ध प्रेम की अपेक्षा रहती है। मास्टर जी की निश्छल श्रद्धा ही श्री गुरूदेव भगवान के विशाल करूणामय हृदय सागर को करुणा की प्रबल जल तरंगों से आन्दोलित करने के लिए पर्याप्त थी। प्रत्युत्तर में श्री प्रभुजी ने अपने सहजता और सरलता के स्वाभाविक गुणों की वृष्टि करते हुए विनोदावेश में गद्–गद् कण्ठ से कहा "राम राम सा लला, राम राम सा। कहाँ से आए हो ?" मास्टर जी ने उत्तर दिया– "ग्राम भरैरा से," और फिर तीव्र प्यास से धैर्य खोते हुए पूछने लगे–" महाराज जी! थोड़ा जल पीने

को मिलेगा क्या? बहुत प्यास लगी है।'' गुरू देव ने सस्नेह कहा— लला! अवश्य मिलेगा जल, थोड़ी देर बैठकर विश्राम कर लो। मैं तुम्हारे लिए जल का प्रबन्ध करता हूँ। पूज्य गुरूदेव भगवान ने स्वयं अपने करकमलों से जल का प्रबन्ध करके उन्हें जलपान कराकर शीतलता का महान सुख प्रदान किया। प्यास के महान कष्ट से मुक्त होकर मास्टरजी ने गुरूदेव के समक्ष गुफादर्शन हेतु अपनी तीव्र उत्सुकता दिखलायी। गुरूदेवजी ने सहर्ष उन्हें गुफा के दिव्य दर्शन कराये। उनकी प्रबल आस्था और श्रद्धा को देखकर प्रभुजी, सदाशिव स्वरूप महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के अनेकों पावन चरित्रों की चर्चा करते हुए उन्हें अत्यधिक स्नेह दुलार प्रदान किया। श्री प्रभुजी के मुखारबिन्द से महाप्रभुजी का गुणानुवाद सुनते ही मास्टर जी के ह्रदय मे पूज्य गुरूदेव के प्रति स्नेह और श्रद्धा के बादल उमड़ने लगे। उन्हें गुरूदेव की ईश्वरी शक्ति के प्रति कोई संशय शेष नहीं रहगया था जिसका परिणाम यह निकला कि किसी से परामर्श अथवा प्रणाम लिए बिना ही वे मन में श्री प्रभुजी को गुरू रूप में प्राप्त करने की धारणा बनाने लगे। श्रद्धा के भाव दृढ़ होने पर श्री रुपसिंह जी ने बड़ी हिम्मत जुटा कर प्रभुचरणों में निवेदन किया, ''महाराज हमारी गुरूदीक्षा लेने की प्रबल इच्छा है। लेकिन हमारी एक विनय है आपसे कि हम घर–घर जाकर भीख नही मांगेंगे। हमारे गांव के लोग कहते हैं कि गुरुदीक्षा लेने वाले महात्माओं को भीख मांगने पर जो भी कुछ प्राप्त होता है उसी से गुजारा करना पड़ता है। प्रभुजी मैं आपकी सेवा तो कर लूंगा किन्तु भीख मांगने में तो मुझे स्वाभाविक भारी संकोच होगा। कृपाकर आप मुझसे ऐसा कार्य मत कराना जिससे गांव के लोग मेरा उपहास करेंगे।

मास्टर जी की भोली बातों को सुन कर श्री प्रभुजी मन ही मन मुस्करा रहे थे उनके इस उपहास की आशंका के मनोविकार का हरण करने के लिए श्री प्रभुजी ने जो विशेष बात कही वह हम सभी के लिये अनुकरणीय और आत्मसात करने योग्य है। उनके निम्नवत् अमर सन्देश पर सभी को गम्भीरता पूर्वक चिन्तन– मनन करना चाहिए। अज्ञानता के घने तिमिर में सोये त्रिगुणात्मक सुख में आरूढ़ लोगों के पुनर्जागरण के लिए भक्तवत्सल परम् गुरूदेव ने श्री रुपसिंह जी से उनकी उपर्युक्त प्रार्थना के प्रत्युत्तर हेतु लोकहित में जो सुन्दर उद्घोषणा की वह इस प्रकार से है—

''लला, योग योगेश्वर परम् करूणानिधान श्री प्रभुजी (महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज) की करूणानुकम्पा पाने के लिए उनके पतित पावन चरण कमलों का भिखारी तो तुम्हें बनना ही पड़ेगा जो एक बार उनकी दया का भिखारी बन जाता है फिर उसे दुनिया में किसी का भिखारी नहीं बनना पड़ता। श्री प्रभुजी उस महाशक्ति का नाम है। जहाँ से जन–जन में, प्रकृति के विभिन्न जड़ अवयवों और जीवजन्तुओं से लेकर लोक लोकान्तरों के असंख्य देवों सिद्ध–महात्माओं, ऋषि–मुनियों व योगियों में यथा पुरूषार्थ उन्हीं की परम् शक्ति का वितरण होता है। उन्हीं की शक्ति से समस्त शक्तियों का प्राकट्य है। अतः सभी को उनके पावन चरण कमलों में सदैव विशेष अनुराग बनाये रखना चाहिए। लला, श्री प्रभुजी सर्वशक्तिमान हैं इस बात को सदा ध्यान में रखना चाहिए।''

परम पूज्य हमारे–आपके सर्वाधार गुरूदेव जी के ये अनमोल और अद्वितीय वचन युग–युग पर्यन्त सर्वप्राणियों के लोक–परलोक हितार्थ अत्यन्त कल्याणकारी है। सर्वप्रिय आनन्दकन्द महाप्रभुजी का गुणानुवाद करने से पूर्व ही गुरूदेव की स्थूल देह भारी रोमांच से भर जाती थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे धरातल पर स्थित समस्त सागरों की अपार जलराशि, आह्लादित हो 'घटाकाशयुक्त महाकाशरूप' स्वरूप महाप्रभुजी को नमन करने के लिए समस्त गगनमण्डल की अनन्त ऊंचाई तक बिखर जाने के लिए तत्पर हो।

उन आनन्दकन्द महाप्रभुजी का स्मरण होते ही गुरूदेव अपने परम् योगस्थ मूल स्वभाव (आत्म स्वरूप) में

लय हो जाते थे। उस अद्भुत, अलौकिक स्वरूपराशि को नेत्रों में धारण करने वाले गुरूभक्त महान सुख का अनुभव करते थे। उनकी स्थूल देह पर दृष्टि रुकने पर लगता था मानो बादल में बिजली कौंधी हो। वाणी से लगता था जैसे संगीत स्वरूपा स्वयं माँ सरस्वती की अमृतधारा का निर्मल प्रवाह हो रहा हो। सदैव स्तुत्य श्री महाप्रभुजी की अनुपम महातम्य वन्दना में, गुरूभक्ति के अतुलित पुरुषार्थ से आविर्भूत उनके पावन मुखारविन्द से निःसृत एक–एक शब्द जो असंख्य वसुन्धराओं के त्याग–बलिदान को तुच्छता प्रदान करके भी, लघुभार से युक्त होकर अपने भोले और अज्ञानी संस्कारी बालकों को स्नेहिल पुष्प की भांति मधुर और मनमोहक लगता था। प्रतीत होता था जैसे अपनी वाणी की अनुपम सुगन्ध के दिव्यानन्द को प्रदान कर बदले में गुरूदेव अपने प्रिय बालकों द्वारा जन्म–जन्मान्तरों में कमाये उनके काम, क्रोध, मोह, अहंकारादि प्रकृतिजन्य दुर्गुणों को ग्रास करने के लिए प्रतिपल आतुर रहते थे। श्रीगुरूदेव जी द्वारा चंचलता के महान दोष से युक्त अपने संस्कारी बालकों, अपने अमृतवचन रूपी पुष्पों से निर्मित लड़ियों में आबद्ध करके उन्हें श्री महाप्रभुजी के पावन चरण कमलों से जोड़ने का उनका यह बड़ा ही अद्भुत और निराला तरीका था। आज गुरूदेव के भले ही आश्रम में स्थूल दर्शन उपलब्ध नहीं है किन्तु कोई चिन्ता की बात नहीं है। वे आज भी गुफा में उपसिीत हैं और सदा–सदा रहेंगे। अब गुरूदेव की पहले से भी ज्यादा कृपाऐं स्थान–स्थान पर हो रही हैं इस बात को सभी सत्संगी भाईजन अनुभूत कर रहे हैं। गुरूदेव तो सदा से हैं, सदा रहेंगे। उनके लिए भूतकाल कभी नहीं होता उन्हें जब भी किसी ने अनुभूत किया अथवा प्रत्यक्ष किया तो सदैव वर्तमान में ही किया है। उनके लाड़ले बच्चों में उनका आत्मतेज है। अब वे अपने शिष्यों के हृदयों को अधिष्ठान करके लाखों रूप और नामों से प्रकट होते रहेंगे। इस प्रकार वे अपने वर्तमान कालरूपी स्वरूप से तीनों कालों में समाविष्ट रहते हैं।

उपरोक्त घटना से सन्तुष्ट होकर श्री रूपसिंह जी अक्सर श्री प्रभुजी के चरणों में आते रहा करते थे। एक रोज निश्चय करके उन्होंने गुरूदेवजी से विधिवत गुरूदीक्षा ग्रहण की और उसी दिन से वे पूर्ण निष्ठा भक्ति के साथ पूज्य गुरूदेव जी के चरण कमलों की सेवा में तत्पर रहते थे।

गांव में वही हुआ जिसका उन्हें भय था। धीरे–धीरे सभी को पता चल गया था कि मास्टर जी ने अपने 'गुरू' कर लिए हैं। गुरूनिष्ठा को कोई खतरा नहीं था क्योंकि अब तक गुरूदेव की महान कृपा से वे महाप्रभुजी की अनेक कृपालीलाओं को अनुभव कर चुके थे।

श्री रूप सिंह जी अपने खेतों पर उपरोक्त प्रकार से गुरू का चिन्तन करते हुए गहरे आनन्द में डूबते चले जा रहे थे कि तभी किसी की वेदनापूर्ण चीत्कार ने उनके चित्त के इस सर्व सुखद अनुभव से एकदम खींच लिया। उनके कानों से किसी अधैर्ययुक्त वाणी के तीव्र आन्देलन टकराये– मास्टर जी ऽऽऽ।

चौंकते हुए उन्होंने पलटकर देखा एक उनका परिचति व्यक्ति खेतों के मध्य होकर लघु रास्तों से चीत्कार करता भगा चला आ रहा है। उसकी दशा को देखकर उन्हें सन्देह होने लगता है अवश्य कोई अप्रिय घटना सुननी पड़ेगी। नजदीक आने पर उसने क्या कहा, स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ा। घबराहट में उसकी वाणी के स्वरों की अपेक्षा उसकी दीर्घ श्वासों का शोर अधिक सुनाई पड रहा था। किसी प्रकार वह श्वासों को रोककर बोला–

— मास्टर जी, शीघ्रता कीजिए। तालाब तक चलना है।

—आखिर किसलिए ?

— आपका लड़का तालब में डूब गया है। काफी देर हो चुकी है, जान बच जाये तो प्रभु की महान कृपा

समझिये।

बात समझमें आते ही मास्टरजी तुरन्त तालाब की ओर दौड़े। तालाब के आकार–विस्तार से मास्टर जी भलीभाँति परिचित थे। बालक को जीवित अवस्था में पाने की वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। रास्ते में, अत्यन्त धैर्यवान मास्टर जी ने गहरे दुःख की संवेदनाओं में आप्लावित होकर पूज्य गुरूदेव का स्मरण किया। उनके वेदनायुक्त हृदय से आर्त निवेदन की सहज धारा फूट निकली।

हे मेरे परम् गुरूदेव! मुझे आपने तीन बालक दिये हैं। एक न सही, आपकी दया से मेरे लौकिक सुख के लिए दो ही पर्याप्त हैं। इस बालक को खोने का मुझे कोई विशेष दुःख नहीं है दुःख तो इस बात का है कि आपके जिस पवित्र नाम और ऐश्वर्य पर भरोसा करके मैं सारे गांव के लोगों के समक्ष गर्व के साथ गुरू महिमा का गुणानुवाद करते नहीं थकता था। उसी परम कल्याणमयी नाम को लेकर अब अज्ञानी ग्रामवासियों की क्या प्रतिक्रिया होगी, मैं यह सोच–सोच कर अपना धैर्य खो रहा हूँ। हे सर्व समर्थ गुरूदेव! आपने ही बतलाया है कि आनन्दकन्द नेपाल पति श्री प्रभुजी सर्व शक्तिमान हैं। मैं उन्हीं महाशक्ति का ध्यान करके आपके श्री चरणों में सविनय प्रार्थना करता हूँ कि इस कठिन परीक्षा की घड़ी में आप मेरी गुरूभक्ति पूर्ण प्रतिष्ठा की सुरक्षा कर मेरे धैर्य को सुदृढ़ बनाये रखने की अनुकम्पा करें। मेरे गांव के लोग तो मुझे पहले ही 'गुरू' बनाने से रोकते थे अब उन्हीं का उपहासपूर्ण प्रश्न होगा– "क्या गुरू बनाने में यही प्राप्त होता है ?" तुम्हें तो बहुत भरोसा है अपने गुरूदेव पर, तो अब तत्काल बच्चे की रक्षा क्यों नहीं कर देते ? तुम से तो हम निगुरे लोग ही भले है। लोग मेरी हँसी करते हैं तो खूब करें किन्तु आपके नाम की हँसी मुझे बर्दाश्त नहीं होगी। आपके होकर अब बच्चे की कुशलता के लिए किसके आगे आर्त पुकार करें ? दीनदयाल नाम तो हमने आपका ही सुना है फिर किस पर भरोसा करें ? शायद परमहरिभक्त दास मलूक की भी कदाचित् यही परिस्थितियां रही होंगी जो उनकी निम्न पक्तियों से स्पष्ट भासित होता है। आओ पढ़ते हैं उनकी वे परम् भक्तिमय, हरि में दृढ़ विश्वास को प्रकट करने वाली सुन्दर पक्तियाँ–

दीन दयाल सुने जब से, तब से मन में कछु ऐसी बसी है,
तेरो कहाय के जाऊँ कहाँ, बस तेरे ही नाम की फैंट कसी है।
तेरो ही आसरो एक 'मलूक', नहीं तो सो कोइ दूजो जसी है,
ये हो मुरारी पुकारि कहूं या में मेरी हँसी नहीं तेरी हँसी है।

इसी प्रकार के चिन्तन में डूबे मास्टरजी तालाब की ओर भागे चले जा रहे थे कि रास्ते में ही किसी ने सूचना दी कि बच्चे को तालाब से निकाल लिया गया है उसमें श्वांस तो है किन्तु प्राण रक्षा में सन्देह है। मास्टर जी की धर्मपत्नी जी भी रोते बिलखतीं घटनास्थल पर पहुंच गईं थीं। अब तक काफी भीड़ इकट्ठी हो चुकी थी। वहाँ पहुंच कर मास्टर जी को ज्ञात हुआ कि गांव के ही श्री महीपाल सिंह और रामेश्वर शर्मा नाम के दो लम्बे–तगड़े अध्यापक अचानक वहां आ निकले। उन्होंने किसी प्रकार कोशिश करके तालाब की कीचड़ में दबे बच्चे को उसकी टांग पकड़कर खींच लिया। देर काफी हो चुकी थी, सभी ने उसे मृत समझ लिया। आशा शेष न रहने से कुछ लोगों ने पहले से ही समीप के खेत में बच्चे को दफनाने हेतु गड्ढा भी खोद लिया था किन्तु योगाधिपति महाप्रभुजी को कुछ और ही मन्जूर था।

गांव के ही एक समझदार और अनुभवी वृद्ध पुरूष पं० वींधारामजी वहाँ उस समय उपस्थित थे कहने लगे, थोड़ा सा मुझे भी देखने दो बालक को। उन्होंने अपनी जाघों पर बच्चे को पेट के बल लिटा कर अपने दोनों हाथों से

उसकी पीठ को बलपूर्वक दबाया। पण्डितजी द्वारा प्रयत्न करने पर थोड़े संघर्ष के पश्चात मुंह से समस्त गन्दे पानी के निकल जाने पर जैसे ही बच्चे ने हिचकी ली तुरन्त सभी में खुशी की लहर दौड़ पड़ी। पण्डित जी अपने उद्योग में सफलता पाकर खुशी से बोले, जिन्दा है! शीघ्र ही किसी योग्य चिकित्सक की सहायता ले ली जाय तो बच्चे के अस्तित्व की सुरक्षा की सम्भावना बढ़ सकती है। ऐत्मादपुर से डाक्टर वेद को बुलवाया गया। उन्होंने बच्चे की बड़ी कुशलता से चिकित्सा की जिसका परिणाम अन्ततः सार्थक सिद्ध हुआ।

बच्चे को आज तीन रोज हो गये थे किन्तु बेहोशी नहीं समाप्त हुई थी। माता-पिता के मुरझाये चेहरे पर आशा की किरणें स्पष्ट झलकती थीं। श्री प्रभुजी की कृपा बराबर बरस रही थी। खिड़की से सूर्यनारायण का सीधा प्रकाश जैसे ही बच्चे के मुखमण्डल पर पड़ा बच्चा अपनी चेतनाशक्ति को पुनः पा गया। अपनी चैतन्यता का अनुभव होते ही बच्चे ने उठने का प्रयत्न किया किन्तु कमजोरी के कारण शीघ्रता से नहीं उठ सका। किसी प्रकार चारपाई से उतरकर वह धीरे-धीरे आँगन में माँ के पास तक पहुँच गया।

उसे होश में आया देख कर माँ ने दौड़ कर उसे अपनी गोद में उठा लिया। बच्चे ने जैसे ही पानी माँगने के लिए अपना मुख खोला घर में सभी के चेहरे खुशी से खिल उठे जैसे मुर्झाये पुष्प पुनः जीवन पाकर खिलखिला उठे हों। कुछ दिनों में बालक पूर्णरूप से स्वस्थ हो गया। एक रोज मास्टरजी ने फुर्सत के क्षणों में अपने इस बच्चे से बड़े प्यार से पूछा, क्यों रे ! तू तालाब में कैसे गिर गया था ? तालाब में गिरने के बाद तुझे कैसा लगता था ?

बच्चे द्वारा ग्रामीण भाषा में दिया गया उत्तर

मास्टरजी के बच्चे उन्हें दद्दूजी कहकर पुकारते हैं। पिताजी को उत्तर देते हुए बच्चे ने कहा—

दद्दूजी ! हम तालाब के किनारे पशु चराय रहे हते। जब खेल रहे हते अपनौ पैर फिसल गयौ और हम तालाब में गिर पड़े। वहाँ पानी के अन्दर एक बाबाजी दीखे। बोले, तू यहाँ कैसे आ गया ? मैं बोलो बाबाजी गिर पड़ो सो आय गयौ। फिर वे बोले, अच्छा तो कोई चिन्ता की बात नहीं है तू मेरी गोद में बैठ जा। उनके माथे पै बहुत सुन्दर चन्द्रमा हतो पर गले में सांप (सर्प) नाय हतो। बाबाजी के बहुत लम्बे-लम्बे बाल हते और लम्बी दाढ़ी हती। दद्दूजी ! उनकी आँखें बहुत लाल-लाल चमक रहीं हतीं। मैं जब उनकी गोद में बैठ गयौ तो उनने मोय बहुत प्यार करो।

एक हाथ मेरे दिल पै रखो और एक हाथ मेरे सिर पर रखो फिर बोले, चिन्ता मत कर अभी दो आदमी तुझे ठीक प्रकार से यहाँ से निकाल लेंगे। जब वे दोनों आदमी तालाब में आये तो बाबाजी बोले अब तू इनके साथ चला जा।

बालक के मुख से उक्त घटना को सुनते ही श्री रूपसिंह जी की आँखों में अनायास ही आँसू छलछला आये। अपने प्रिय बालकों के लिए अतिशय करुणा के भण्डार श्री महाप्रभुजी और परम पूज्य गुरुदेव जी से मन ही मन वे बारम्बार क्षमा याचना करते रहे। वे सब ओर हाथ वाले, सब ओर मुख वाले और सब ओर पैर वाले हैं उनकी महिमा का क्या पार ? पल में क्या से क्या करते हैं। मैंने व्यर्थ ही गुरुदेव जी के अकाट्य वाक्यों पर सन्देह किया। जन-जन पर उमड़ते उनकी उदारता के सतत् सस्नेह प्रवाह पर संशय किया। हे परम् योगेश्वर महाप्रभुजी ! मैं बार-बार क्षमा-प्रार्थी हूँ। मुझे क्षमा करने की कृपा करें। इस प्रकार पश्चाताप की अग्नि में सुलगते मास्टरजी बोझिल कदमों से अपने खेतों की ओर चल दिये।

(क्रमशः)

* * *

शोक संवेदना

१. श्री गुरुदेव जी के प्रिय एवं लाडले बालक हमारे गुरुभाई श्री लक्ष्मीनारायण जी निवासी बरौदा (सोनीपत), का पिछले नवम्बर माह में देहावसान हो गया। ब्र० श्री सूरजजी के समकालीन भाई लक्ष्मी नारायण जी पूज्य गुरुदेव जी के पुराने निकटस्थ ब्रह्मचारियों में से एक थे जिन्होंने अटूट श्रद्धा और श्रेष्ठ गुरुभक्ति से जीवन पर्यन्त श्री गुरुदेवजी की व आश्रम की सेवा की। उनके निधन से श्री सिद्धयोग पीठ के सभी सदस्यों को गहरा धक्का लगा है। हम सभी परम प्रभुजी से सविनय प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें अपने अभय चरण कमलों में स्थान देने की महान कृपा करें।

२. ग्रा० उल्दापुर जि० एटा निवासी मास्टर नाथूराम शर्मा जी परम गुरुदेवजी के बहुत अच्छे सेवकों में से एक थे। जिन्होंने अपनी अनन्य गुरुनिष्ठा और अनुपम सेवा से परम गुरुदेव के साथ—साथ समस्त गुरुभक्तों के हृदयों को भी प्रसन्न किया। समस्त आश्रम की लिपाई का सेवा कार्य उन्होंने कई वर्षों से स्वयं अपनी जिम्मेदारी पर ले लिया था जिसे वे तीव्र लगन के साथ अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक निभाते रहे। पिछले दिसम्बर माह में उन्होंने श्री महाप्रभुजी व गुरुदेव जी का चिन्तन करते हुए अपना पंचभौतिक शरीर, इस पंचभौतिक सृष्टि को समर्पित कर दिया। उनके निधन से समस्त गुरुभक्तों को गहरा आघात पहुँचा है। हम सभी लोग उनके परिवारी जनों को इस असहनीय दु:ख में परमशान्ति हेतु तथा दिवंगतात्मा के परम कल्याण हेतु उन परम करुणानिधि प्रभु से सहृदय प्रार्थना करते हैं।

३. फरवरी माह में, पूज्य गुरुदेव भगवान के प्रिय बालक दुर्गासिंह तौमर जी की धर्मपत्नी श्रीमती भगवती देवीजी निवासी ग्वालियर का अकस्मात् निधन हो गया। इनकी श्री गुरुदेवजी के चरण कमलों में प्रबल आस्था थी। श्री तौमर परिवार से लगभग सभी गुरुभाई—बहिन परिचित हैं। विषम परिस्थितियों में भी वे किसी प्रकार समय निकाल कर गुरु दर्शनार्थ सपरिवार आश्रम में उपस्थित हो जाया करती थीं। आनन्दकन्द महाप्रभुजी की महान अनुकम्पा से उन्हें अनेकों बार गुरुदेव के सानिध्य में गुरु चरण कमलों के सन्निकट रहकर 'परम गुरुचरण रजप्रसाद' पाने का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त होता रहा। नवम्बर माह में, सालवन निवासी श्री वैद्यराज नारायणदत्त शर्मा (श्री गुरुदेव जी के भान्जे) जी की धर्मपत्नी का भी शरीरान्त हो गया है। इन दोनों देवियों के परिवारीजनों को भी सिद्धयोग परिवार अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करते हुये श्री प्रभुजी से प्रार्थना करता है कि वे इन्हें इस दु:ख के समय में सांत्वना और शान्ति प्रदान करते हुये स्थूल देहमुक्त दोनों देवियों को अपना अक्षय लोक प्रदान करने की करुणा करें।

SIDDHAYOGA Regd. No. L. AG. 008 अप्रैल, 1999

प्रेषण कार्यालय :–

सिद्धयोग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक
श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

PRINTED MATTER
Book Post

श्री ------------------------

वेदान्त विज्ञान सुनिश्चतार्थाः
सन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृताः परमुच्यति। (मुण्डकोपनिषद् ।३।२।६)

जिन्होंने वेदान्त शास्त्र के सम्यक् ज्ञान द्वारा उसके अर्थस्वरूप परमात्मा को भलीभाँति निश्चय पूर्वक जान लिया है तथा कर्मफल और कर्यासक्ति के त्यागरूप योग से जिनका अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध हो गया है, ऐसे सभी प्रयत्नशील साधक मरणकाल में शरीर का त्याग करके परब्रह्म परमात्मा के परमधाम में जाते हैं और वहाँ परम अमृत स्वरूप होकर संसार बन्धन से सदा के लिए सर्वथा मुक्त हो जाते हैं।

प्रकाशक एवं मुद्रक–विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिण्टिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिण्टिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई, आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326